ईसप की कहानियां



शिक्षा भारती, दिल्ली-३२

रूपान्तरकार

जहूरबख़्श

Zahoor Bakhsh

मूल्य : एक रुपया पचास नये पैसे 1.50
प्रकाशक : शिक्षा भारती, जी० टी० रोड
शाहदरा, दिल्ली-३२
मुद्रक : हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली

AESOP KI KAHANIYAN : ZAHOORBAKHSH

इस पुस्तक के लेखक के संबंध में—

संसार में आज तक जितने प्रतिभाशाली कथाकार हुए हैं, उनमें लोकप्रियता की दृष्टि से ईसप का बहुत अच्छा स्थान है।

ईसापूर्व लगभग ६०० वर्ष पूर्व ग्रीस के लीडिया प्रान्त में ईसप का जन्म हुआ था। वे देखने में कुरूप, कुबड़े और नाटे थे। बहुत दिनों तक गुलाम के रूप में उन्हें रहना पड़ा पर फिर वे अपनी प्रतिभा के बल पर मुक्त हो गए।

ईसप ने अपनी प्रतिभा और अनुभव के आधार पर बहुत ही मनोरंजक और ज्ञानपूर्ण कहानियां लिखी हैं। इन कहानियों में पशुओं-पक्षियों की साधारण-सी चर्चा है, परन्तु वास्तव में ये मानव-स्वभाव की दुर्बलताओं पर गहरा व्यंग्य हैं। ये कहानियां मानव-मात्र को जहां सुन्दर शिक्षा देती हैं वहां सदाचरण का सीधा-सादा मार्ग भी बताती हैं।

ईसप की ये कहानियां तत्कालीन ग्रीस में भली भांति सम्मान पाती थीं; फिर भी वहां कुछ लोग ऐसे थे, जो इन कहानियों को पसन्द नहीं करते थे। वे ईसप का अहित भी चाहने लगे। ईसप को पकड़कर वे एक पहाड़ पर ले गए और निर्ममतापूर्वक उनके प्राण ले बैठे।

धीरे-धीरे वह समय भी आया, जब ग्रीस की जनता ने ईसप की मृत्यु के दो सौ वर्ष उपरान्त उनकी पाषाण-मूर्ति ग्रीस के सात ज्ञानी पुरुषों की मूर्तियों के निकट स्थापित कर उनके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रदर्शित की।

कहानियों की सूची

१. जैसी करनी, वैसी भरनी

गिद्ध के कुछ बच्चे थे। एक दिन उनको देर तक भोजन न मिला और वे मारे भूख के बेचैन हो उठे। गिद्ध उनकी भूख मिटाने के लिए जंगल की ओर चला और खाने लायक कोई चीज़ ढूंढ़ने लगा। अचानक उसकी नज़र लोमड़ी के एक बच्चे पर पड़ी। वह मन में बोला, 'अहा, कितनी बढ़िया चीज़ है। क्यों न इसे ही ले चलूं ! बच्चे खाएंगे, तो खुश हो जाएंगे।' बस, उसने लप् से लोमड़ी के बच्चे को अपने पंजे में दबोच लिया।

इतने में लोमड़ी भी आ पहुंची। अपने प्यारे बच्चे को मौत के चंगुल में देखकर वह बहुत घबराई और रो-रोकर गिद्ध से कहने लगी, "भैया, यह मेरा इकलौता बच्चा है। मुझे प्राणों से अधिक प्यारा है ! दया करो, इसे छोड़ दो। यह बचा रहेगा तो मैं मरते-मरते तुम्हारा उपकार मानूंगी और तुम्हें आशीर्वाद दिया करूंगी। तुम पक्षियों के राजा हो। भला, तुम्हें किस चीज़ की कमी है ! इसे छोड़ दो, भैया ! मैं तुम्हारे पैर पड़ती हूं। तुमसे अपने बच्चे के प्राणों की भीख मांगती हूं।"

परन्तु गिद्ध तो गिद्ध ही था। वह लोमड़ी के रोने-कलपने पर ज़रा भी न पसीजा और उसके बच्चे को लेकर उड़ चला। लोमड़ी भी चीखती-चिल्लाती उसके पीछे-पीछे दौड़ी, "छोड़ दो

भैया, मेरे बच्चे को छोड़ दो, भैया !"

भला गिद्ध कब उसकी सुनने वाला था। उसने लोमड़ी के बच्चे को अपने बच्चों के सामने रख दिया और वे उसे मज़े से नोच-नोचकर, चबा-चबाकर खाने लगे।

अपने प्यारे बच्चे को अपनी आंखों के सामने इस तरह मरते देखकर लोमड़ी मारे क्रोध के आपे से बाहर हो उठी और कड़ककर बोली, "ठहर जा पापी, देखती हूं तुझे ! इस करनी का ऐसा मज़ा चखाती हूं कि जब तक तू जिएगा, तेरी आंखों के आंसू न सूखेंगे।"

गिद्ध को अपने बल का बड़ा अभिमान था। उसने खिल-खिलाकर कहा, "ह-ह-ह ! तू मुझे मज़ा चखाएगी ! पगली कहीं की ! जा जा, भाग जा ! यदि एक धप जमा दूंगा, तो अभी टें बोलकर रह जाएगी। बता, जाती है, या नहीं !"

लोमड़ी ने इधर-उधर नज़र डाली। पास ही एक जगह आग जल रही थी। बस, लोमड़ी को बदला चुकाने का उपाय सूझ गया। उसने जल्दी-जल्दी बहुत-सी लकड़ियां बटोरकर उस वृक्ष के चारों ओर जमाईं और उनपर थोड़ी-सी आग रख दी। लकड़ियों ने देखते-देखते आग पकड़ ली और उसकी लपटें आकाश को छूने लगीं। अब क्या था, गिद्ध फुर्र से एक ओर भाग निकला। परन्तु उसके बच्चे अभी उड़ना नहीं जानते थे, इसलिए वे आग से झुलस-झुलसकर धरती पर गिरने लगे और लोमड़ी उनको एक-एक कर सटकने लगी। इसके बाद उसने गिद्ध से कहा, "देखा तूने, कैसा बदला चुकाया मैंने।"

गिद्ध का अभिमान चूर-चूर हो चुका था। वह रोते-रोते



बोला, "बहिन, मैंने जैसा किया, वैसा फल पाया। कहावत भी है कि जैसी करनी, वैसी भरनी। यदि मैं पहले ही समझ लेता कि भगवान ने मुझे जो बल दिया है, वह किसीको हानि पहुंचाने के लिए नहीं है, तो···!"

२. अपना काम, अपने हाथों

एक गाड़ीवान अपनी गाड़ी लेकर जंगल में पहुंचा। वहां उसने गाड़ी में लकड़ियां भरीं। इसके बाद वह गाड़ी लेकर घर की ओर लौटा। रास्ते में उसे एक नाला पार करना पड़ा। परन्तु नाले में कीचड़ था। बस, गाड़ी का एक पहिया कीचड़ में फंस गया और वह नाला पार न कर सकी।

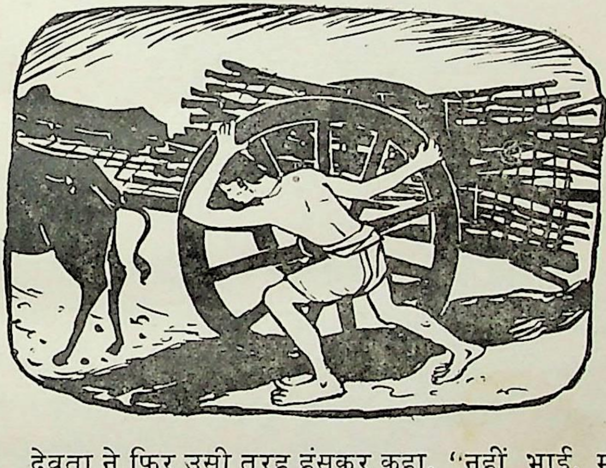
गाड़ीवान ने बैलों को मारा-पीटा। परन्तु गाड़ी का पहिया कीचड़ से बाहर न निकला। वह जहां का तहां फंसा रहा। अब तो गाड़ीवान आंखें फाड़-फाड़कर इधर-उधर देखने लगा। परन्तु वहां कौन था, जो उसकी सहायता करता! आखिर बेचारा वहीं कीचड़ में बैठ गया और लगा ज़ोर-ज़ोर से अपने देवता को पुकारने, "हे महाराज, मेरी थोड़ी-सी सहायता करो। बस, यह गाड़ी कीचड़ से बाहर निकाल दो। मैं तुम्हें प्रसाद चढ़ाऊंगा।"

देवता ने गाड़ीवान की पुकार सुन ली। वे फौरन उसके सामने आ पहुंचे और बोले, "क्यों पुकार रहे हो मुझे? कहो, क्या चाहते हो?"

गाड़ीवान ने हाथ जोड़कर उत्तर दिया, "महाराज, मेरी गाड़ी कीचड़ में फंसकर रह गई है। बस, इसे बाहर निकाल दो और नाले के उस पार पहुंचा दो। मैं तुम्हें प्रसाद चढ़ा दूंगा।"

देवता हंसकर बोले, "अच्छे बुद्धू हो! बस, बैलों को मार-पीट रहे हो! भला, इस तरह गाड़ी कीचड़ से बाहर कैसे निकलेगी! अरे भाई, तुम भी पहिए पर ज़ोर लगाओ, बैलों को भी ज़ोर लगाने के लिए ललकारो, फिर देखो, गाड़ी कीचड़ से बाहर निकलती है या नहीं।"

यह सुनते ही गाड़ीवान ने जो पहिये पर ज़ोर लगाया और ज़ोर लगाने के लिए बैलों को ललकारा, तो गाड़ी खट से कीचड़ के बाहर हो गई। अब तो गाड़ीवान मारे खुशी के उछल पड़ा और बोला, "महाराज, तुमने बड़ी कृपा की जो मेरी गाड़ी कीचड़ से बाहर निकाल दी। बस, अभी घर पहुंचता हूं और तुम्हें प्रसाद चढ़ाता हूं।"



देवता ने फिर उसी तरह हंसकर कहा, "नहीं भाई, मुझे तुम्हारे प्रसाद की आवश्यकता नहीं है। मैंने न तुम्हारी सहायता की है, न तुम्हारी गाड़ी कीचड़ से बाहर निकाली है। सच पूछो, तो तुमने अपने ही हाथों अपनी सहायता की है—अपनी गाड़ी कीचड़ से बाहर निकाली है!"

गाड़ीवान को आश्चर्य हुआ और हाथ जोड़कर देवता से पूछा, "तो तुमने मेरी सहायता नहीं की?"

देवता ने उत्तर दिया, "तुम मेरा मतलब नहीं समझे! मेरा

मतलब यह है कि जो आदमी दूसरों के भरोसे नहीं रहता और अपना काम अपने हाथों करता है, वह मानो आप ही अपनी सहायता करता है। बस, मैं ऐसे ही आदमी पर प्रसन्न रहता हूं, और उसे सहायता पहुंचाता हूं। परन्तु जो आदमी दूसरे का मुंह ताकता है, वह अपना काम तो बिगाड़ता ही है, मेरी कृपा भी नहीं पाता।"

३. अक्ल बड़ी या भैंस

एक गधा मैदान में हरी-हरी कोमल-कोमल दूब चर रहा था। अचानक जो उसने सर उठाया, तो एक बाघ को अपनी ओर आते देखा।

गधा समझ गया कि अब प्राण बचाना, बाघ के सामने से भाग निकलना असम्भव है। फिर क्या करें? यों ही प्राण खो दें? बड़े-बूढ़े कहावत बना गए हैं—अक्ल बड़ी या भैंस? क्यों न आज यही कहावत काम में लाएं, बुद्धि से बल को नीचा दिखाएं और बाघ को उल्लू बनाएं!

यह सोचते-सोचते गधे ने पिछले एक पैर से लंगड़ा-लंगड़ाकर चलना शुरू कर दिया। बाघ ने गधे के पास आते-आते पूछा, "क्यों भाई गधे, यह तू लंगड़ा-लंगड़ाकर क्यों चलता है?"

गधे ने उत्तर दिया, "क्या कहूं सरकार, दौड़ते समय पैर में एक बहुत लम्बा, बहुत मोटा कांटा चुभ गया है। उसीसे पैर में बहुत कष्ट हो रहा है और मैं लंगड़ा-लंगड़ाकर चल रहा हूं।"

बाघ ने पूछा, "फिर?"

गधे ने कहा, "यदि मुझे खाने का विचार रखते हो, तो पहले वह कांटा बाहर निकालो। कहीं ऐसा न हो, कि मुझे खाते समय वह कांटा गलती से तुम्हारे गले में अटक जाए और तुम्हें अपने प्राण खोने पड़ें।"

बाघ को गधे का कहना जंच गया। उसने गधे का वह पैर उठाया और बड़े ध्यान से उसमें कांटा ढूंढ़ना शुरू किया। गधे ने



यह मौका बहुत अच्छा समझा और कसकर दुलत्ती फटकारी तथा हवा के समान तेज़ी से भाग निकला।

जो तड़ाक से दुलत्ती की चोट पड़ी तो बाघ का मुंह टेढ़ा हो

गया। उसके सामने वाले दांत झड़ गए और जबड़े खून से भर गए। बस, वह लज्जित होकर कह उठा, "उफ ! गधे की बुद्धि के सामने बाघ का बल कुछ काम न आया !"

४. काल करे सो आज कर, आज करे सो अब

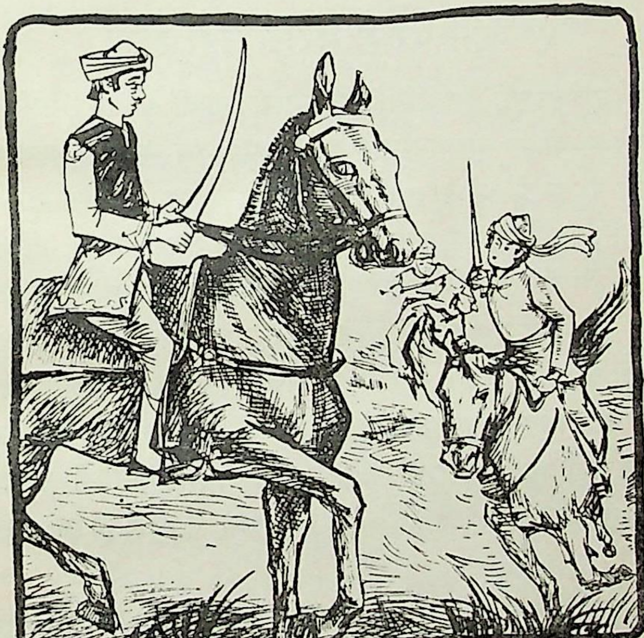
सिपाही बहुत बलवान था, बहुत बहादुर था, बहुत लड़नेवाला था। उसका घोड़ा भी वैसा ही बलवान, बहादुर और लड़ने का हौसला रखनेवाला था। एक दिन सिपाही अपने घोड़े पर बैठकर किसी पहाड़ी रास्ते से जा रहा था। अचानक घोड़े का पैर एक पत्थर से टकराया और उसकी नाल निकल गई। नाल निकल जाने से घोड़े को बहुत कष्ट हुआ और वह लंगड़ाकर चलने लगा।

सिपाही ने घोड़े का यह कष्ट समझ तो लिया, परन्तु उसकी कोई विशेष चिन्ता नहीं की। बस, वह इसी सोच में डूबा रहा—नाल आज बंधवा दूंगा, कल बंधवा दूंगा। इस प्रकार आज-कल के चक्कर में दिन निकलते गए और घोड़े का कष्ट दूर न हुआ।

अचानक देश पर शत्रुओं ने आक्रमण कर दिया। राजा की ओर से सिपाही को आज्ञा मिली, "बस, चलो फौरन लड़ाई पर।"

अब सिपाही क्या करता ! इतना समय ही कहां था, जो वह घोड़े के पैर में नाल बंधवा पाता ! परन्तु लड़ाई पर तो जाना ही था, इसलिए वह उसी लंगड़ाते हुए घोड़े पर बैठा और दूसरे सिपाहियों के साथ चल पड़ा।

दुर्भाग्यवश घोड़े के दूसरे पैर से भी नाल निकल गई। पहले तो वह तीन पैरों से कुछ-कुछ चल भी लेता था, परन्तु अब दो पैरों से क्या करता; किस तरह आगे बढ़ता! देखते-देखते शत्रु सामने आ पहुंचे। वे संख्या में इतने अधिक थे कि उनके सामने



सिपाही के साथी ठहर भी न सके। वे फौरन अपने-अपने घोड़े दौड़ाकर लड़ाई के मैदान से भाग निकले।

परन्तु वह सिपाही कैसे भागता! उसका लंगड़ा घोड़ा जहां का तहां खड़ा रह गया। शत्रुओं ने पलक मारते सिपाही को बांध लिया और सिपाही ने दु:ख से हाथ मलते-मलते कहा, "यदि मैं आज-

कल के चक्कर में न पड़ा रहता और उसी दिन अपने घोड़े के पैरों में नई नाल बंधवा देता तो आज इस विपत्ति में क्यों फंसता ?"

५. काम पराये भरोसे नहीं होता

एक सारसी खेत में घोंसला बनाकर रहती थी और उसीमें अपने बच्चों का लालन-पालन करती थी। जब खेत की फसल पकने पर आई, तब सारसी सोचने लगी—अब खेत में कटाई चलेगी; इसलिए यहां रहना और बच्चों को रखना ठीक नहीं। परन्तु बच्चों ने अभी तक उड़ना नहीं सीखा था। इसलिए उसने और कुछ दिन तक खेत में ठहरना ही आवश्यक समझा और बच्चों से कहा, "देखो, मैं रोज़ ही घोंसले से बाहर जाती हूं। अब यहां खेत में किसान आएंगे और भांति-भांति की बातें करेंगे। तुम ध्यान से वे बातें सुनना और फिर मुझे सुनाना, जिससे मैं समय रहते तुम्हारी भलाई के लिए ठीक-ठिकाने से कुछ काम कर सकूं !"

एक दिन सारसी घोंसले से बाहर कहीं कीड़े-मकोड़े खाने गई हुई थी। कुछ देर बाद यहां खेत में किसान आया। वह पौधे देखते-देखते बोला, "अन्न पक गया है, कटने लायक हो गया है। अच्छा चलूं, पड़ोसियों से कह दूं। वे आएंगे और किसी दिन काट-कूट ले जाएंगे।"

जब सारसी लौटकर घोंसले में आई, तो बच्चों ने उसे किसान की कुल बातें ज्यों की त्यों सुना दीं। फिर उससे कहा,

"बस, हमें किसी दूसरी जगह ले चलो। मालूम नहीं, किसान कब यहां आ धमके और हम लोगों के प्राण संकट में पड़ जाएं।"

सारसी बोली, "अभी ज़रा भी चिन्ता करने की बात नहीं है। किसान अपने पड़ोसियों के भरोसे है, इसलिए अभी खेत कटने में बहुत देर है। भला पड़ोसी अपने खेत काटेंगे या इसका खेत काटने आ जाएंगे!"

कुछ दिन बाद किसान फिर खेत में आया। उसने पौधे देखते-देखते कहा, "अन्न तो बिलकुल पक गया है; परन्तु पड़ोसियों ने इसे काटने के लिए अब तक हाथ नहीं लगाया है। उनका भरोसा करना व्यर्थ है। अच्छा चलूं, भाइयों से कह देखूं; शायद वे आएं और इसे काट ले जाएं।"

जब शाम को सारसी घोंसले में वापस आई, तो बच्चों ने उसे किसान की ये बातें भी ज्यों की त्यों सुना दीं। फिर उससे कहना शुरू किया, "अब तो हम लोगों को दूसरी जगह ले चलो। अब किसान के भाई खेत काटने आएंगे और हम लोगों के प्राण संकट में डालेंगे!"

सारसी उनको समझाने लगी, "पागल तो नहीं हो गए! अभी चिन्ता करने की कौन-सी बात है। किसान व्यर्थ ही अपने भाइयों का भरोसा कर रहा है। अभी तो वे अपने खेत काटने में लगे हुए हैं। भला वे अपना काम छोड़कर इसका खेत काटने क्यों आने लगे!"

दो-तीन दिन बाद किसान फिर खेत में आया और पौधे देखते ही कह उठा, "अब तो अनाज इस तरह पक गया है कि पौधों से टूट-टूटकर झड़ने लगा है। परन्तु मेरे भाइयों ने इसे

काटने के लिए कुछ नहीं किया। यदि और देर की जाएगी, तो मुझे बहुत हानि उठानी पड़ेगी। इसलिए अब दूसरों का मुंह ताकना व्यर्थ है। अब तो मैं अपना ही भरोसा करूंगा और कल सुबह से ही खेत काटने में भिड़ जाऊंगा !"

आज भी बच्चों ने सारसी को ये सारी बातें सुनाईं। फिर उससे आग्रहपूर्वक कहा, "मां, अब भी दूसरी जगह चलोगी या यहीं रहकर हम लोगों के प्राण संकट में डालोगी !"

सारसी बोली, "हां, अब चलूंगी ! सवेरा होने से पहले ही यह जगह छोड़ दूंगी। अब किसान समझ गया है कि अपना काम पराये भरोसे नहीं होता, इसलिए वह कल अवश्य खेत काटने आएगा।"

६. कौआ मोर बनने चला

एक कौआ जब-जब मोरों को देखता था, तब-तब ललच उठता था और मन में कहने लगता था, 'भगवान ने मोरों को कितना सुन्दर, कितना मनोहर रूप दिया है ! यदि मैं भी ऐसा सुन्दर, ऐसा मनोहर रूप पाता तो आनन्द ही आनन्द में अपना समय बिताता।'

एक दिन कौए ने देखा कि जंगल में मोरों की बहुत-सी पूंछें बिखरी पड़ी हैं। बस, कौआ लगा फुदक-फुदककर नाचने और कहने, "वाह भगवन्, वाह ! बड़ी कृपा की तुमने, जो मेरी पुकार सुन ली ! मैं अभी इन पूंछों का उपयोग करता हूं और अच्छा-

खासा मोर बना जाता हूं।"

इसके बाद कौए ने चोंच से मोरों की वे पूंछें इकट्ठी कीं और अपनी पूंछ के आसपास खोंस लीं। फिर वह अपना नया रूप देखते-देखते बोला, "वाह-वाह! ज़रा आकर देखें मुझे कौए! भला वे क्या खाकर ठहरेंगे मेरे सामने। अब मैं मोरों से किस बात में कम हूं? एकदम उन्हींके समान सुन्दर और मनोहर हो उठा हूं। अच्छा, तो अब चलूं उनके पास और आनन्द मनाऊं उनके साथ!"

इस प्रकार कौआ बड़े अभिमान के साथ मोरों के सामने पहुंचा। उसे देखते ही मोरों ने ज़ोरों से एक ठहाका लगाया और एक मोर ने तो चीख-चीखकर कहा, "ज़रा देखो तो इस नीच कौए को! यह हमारी फेंकी हुई पूंछें बटोर-बटोरकर चला है मोर बनने! लगाओ बदमाश को चोंचों और पंजों से कस-कसकर ठोकरें!"

यह सुनते ही सबके सब मोर उस कौए पर टूट पड़े और उन्होंने दे चोंचें, दे पंजे, ऐसी गत बनाई उसकी कि उसमें वहां ठहरने की हिम्मत भी न रही। वह भागा-भागा कौओं के पास पहुंचा और उनसे कहा, "भाइयो, ये मोर तो कौओं से बड़ी शत्रुता रखते हैं! अभी थोड़ी देर पहले की बात है; मैं उनके पास जा निकला, तो वे सभी कौओं को लगे बुरी-बुरी गालियां सुनाने!"

इसपर एक बूढ़ा कौआ अपने भाइयों से बोला, "सुनते हो इस बदमाश की बातें! यह हम लोगों की हंसी उड़ाता था और मोर बनने के लिए पागल रहता था! इसे इतना ज्ञान भी नहीं

काटने के लिए कुछ नहीं किया। यदि और देर की जाएगी, तो मुझे बहुत हानि उठानी पड़ेगी। इसलिए अब दूसरों का मुंह ताकना व्यर्थ है। अब तो मैं अपना ही भरोसा करूंगा और कल सुबह से ही खेत काटने में भिड़ जाऊंगा!"

आज भी बच्चों ने सारसी को ये सारी बातें सुनाईं। फिर उससे आग्रहपूर्वक कहा, "मां, अब भी दूसरी जगह चलोगी या यहीं रहकर हम लोगों के प्राण संकट में डालोगी!"

सारसी बोली, "हां, अब चलूंगी! सवेरा होने से पहले ही यह जगह छोड़ दूंगी। अब किसान समझ गया है कि अपना काम पराये भरोसे नहीं होता, इसलिए वह कल अवश्य खेत काटने आएगा।"

६. कौआ मोर बनने चला

एक कौआ जब-जब मोरों को देखता था, तब-तब ललच उठता था और मन में कहने लगता था, 'भगवान ने मोरों को कितना सुन्दर, कितना मनोहर रूप दिया है! यदि मैं भी ऐसा सुन्दर, ऐसा मनोहर रूप पाता तो आनन्द ही आनन्द में अपना समय बिताता।'

एक दिन कौए ने देखा कि जंगल में मोरों की बहुत-सी पूंछें बिखरी पड़ी हैं। बस, कौआ लगा फुदक-फुदककर नाचने और कहने, "वाह भगवन्, वाह! बड़ी कृपा की तुमने, जो मेरी पुकार सुन ली! मैं अभी इन पंछों का उपयोग करता हूं और अच्छा-

खासा मोर बना जाता हूं।"

इसके बाद कौए ने चोंच से मोरों की वे पूंछें इकट्ठी कीं ग्रौर ग्रपनी पूंछ के ग्रासपास खोंस लीं। फिर वह ग्रपना नया रूप देखते-देखते बोला, "वाह-वाह ! ज़रा ग्राकर देखें मुझे कौए ! भला वे क्या खाकर ठहरेंगे मेरे सामने। ग्रब मैं मोरों से किस बात में कम हूं ? एकदम उन्हींके समान सुन्दर ग्रौर मनोहर हो उठा हूं। ग्रच्छा, तो ग्रब चलूं उनके पास ग्रौर ग्रानन्द मनाऊं उनके साथ !"

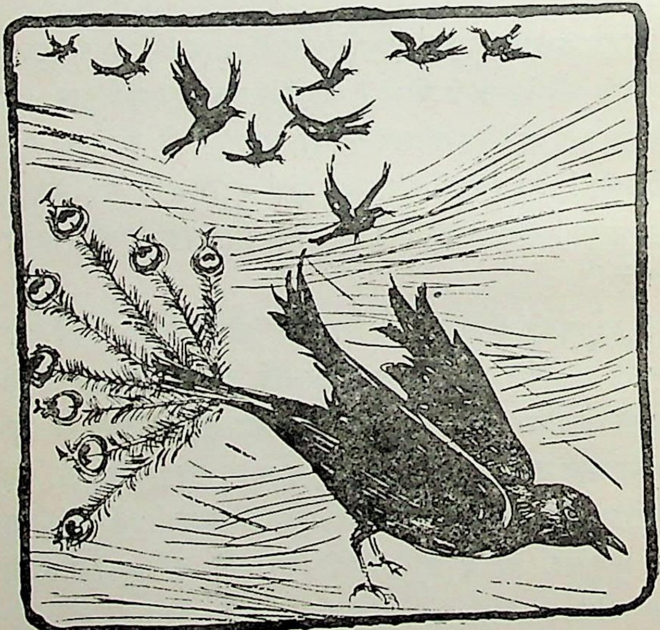
इस प्रकार कौग्रा बड़े ग्रभिमान के साथ मोरों के सामने पहुंचा। उसे देखते ही मोरों ने ज़ोरों से एक ठहाका लगाया ग्रौर एक मोर ने तो चीख-चीखकर कहा, "ज़रा देखो तो इस नीच कौए को ! यह हमारी फेंकी हुई पूंछें बटोर-बटोरकर चला है मोर बनने ! लगाग्रो बदमाश को चोंचों ग्रौर पंजों से कस-कसकर ठोकरें !"

यह सुनते ही सबके सब मोर उस कौए पर टूट पड़े ग्रौर उन्होंने दे चोंचें, दे पंजे, ऐसी गत बनाई उसकी कि उसमें वहां ठहरने की हिम्मत भी न रही। वह भागा-भागा कौग्रों के पास पहुंचा ग्रौर उनसे कहा, "भाइयो, ये मोर तो कौग्रों से बड़ी शत्रुता रखते हैं ! ग्रभी थोड़ी देर पहले की बात है; मैं उनके पास जा निकला, तो वे सभी कौग्रों को लगे बुरी-बुरी गालियां सुनाने !"

इसपर एक बूढ़ा कौग्रा ग्रपने भाइयों से बोला, "सुनते हो इस बदमाश की बातें ! यह हम लोगों की हंसी उड़ाता था ग्रौर मोर बनने के लिए पागल रहता था ! इसे इतना ज्ञान भी नहीं

था कि जो प्राणी अपनी जाति से सन्तुष्ट नहीं रहता, उसे बदलने की इच्छा रखता है, वह जहां जाता है, वहीं अपमान पाता है। आज यह मोर का रूप बनाकर मोरों के पास गया और अब उनकी लातें खाकर हम लोगों में मिलने आया है। बदमाश, धोखे-बाज़ कहीं का! ज़रा लगाओ तो इसे कसकर चोंचों और पंजों की मार!"

इतना सुनते ही सबके सब कौए उस कौए पर टूट पड़े...।



७. आधी छोड़ पूरी को धावे; ऐसा डूबे, थाह न पावे

एक कुत्ता किसी घर में घुसा और वहां आधी रोटी पा गया। बस, वह उसे मुंह में दबाकर घर से बाहर निकला और तेज़ी से नदी की ओर भागा—इस विचार से कि नदी के उस पार पहुंचूंगा तो आराम से किसी झाड़ी में बैठूंगा और स्वाद ले-लेकर यह आधी रोटी खाऊंगा।

कुत्ता भागते-भागते नदी के किनारे पहुंचा। फिर नदी में घुसा और उसे जल्दी-जल्दी पार करने लगा। अचानक उसने नदी के साफ पानी में अपनी परछाईं देखी; अपनी परछाईं के मुंह में आधी रोटी दबी देखी। बस, उसके लोभ की, उसके आनन्द की सीमा न रही। उसकी समझ में एक ही बात आई—पानी के भीतर कोई दूसरा कुत्ता, मुंह में आधी रोटी दबाए चला जा रहा है। यदि मैं उसपर हमला बोल दूं और उससे यह आधी रोटी छीन लूं, तो कितने मज़े में रहूं! आधी रोटी के बदले एक—पूरी एक रोटी पा जाऊं और फिर वह एक रोटी खूब स्वाद ले-लेकर चबाऊं-खाऊं।

मन में यह विचार आते ही कुत्ता अपनी परछाईं पर झपट पड़ा और लाल-लाल आंखें निकालकर गुर्रा उठा, "भों!… भों!…भों!"

परन्तु यह क्या! कुत्ते ने गुर्राने के लिए ज्योंही अपना मुंह खोला, त्योंही वह आधी रोटी उसके दांतों की पकड़ से छूटकर नदी के पानी में जा गिरी और गिरते ही धार में न जाने कहां बह गई।

कुत्ता मुंह बाए कुछ देर तक धार में बहती हुई रोटी की ओर देखता रहा। फिर ठण्डी सांस लेते-लेते बोला, "बुरा हो इस लोभ का ! मैं इसके फन्दे में क्या फंसा, अच्छा-भला घाटे के रास्ते उतर गया ! आधी रोटी बढ़ाकर एक रोटी तो कर नहीं सका, उलटे उसीसे हाथ धो बैठा ! सच है, जो निश्चित को छोड़कर अनिश्चित को पाने की आशा में दौड़ता है, वह अनिश्चित तो पाता ही नहीं, निश्चित भी गंवाता है ! किसीने क्या खूब कहा है—आधी छोड़ पूरी को धावे; ऐसा डूबे, थाह न पावे।"

८. असलियत छिपी नहीं रहती

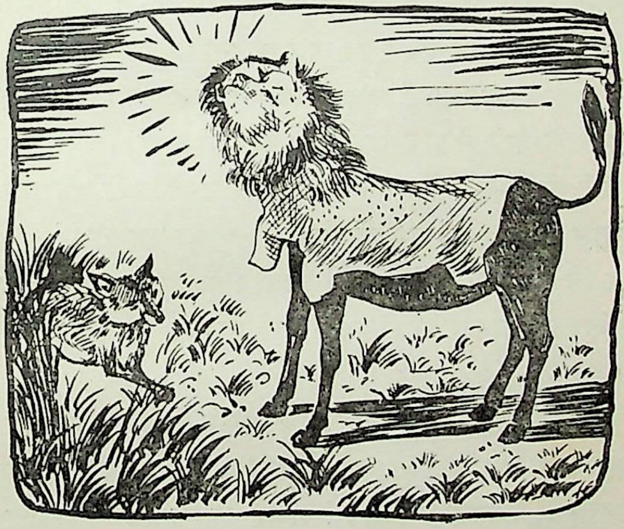
एक गधा जंगल में इधर-उधर घूम रहा था। रास्ते में उसे कहीं शेर की खाल पड़ी मिल गई। बस, वह बहुत प्रसन्न हुआ और सोचने लगा कि अब इस चमड़े का क्या किया जाए !

सोचते-सोचते गधे की समझ में एक उपाय आया। वह शेर की खाल को ओढ़कर बोला, "अहा ! अब तो मैं शेर बन गया ! जंगल का राजा हो गया ! अब जंगल के पशु मुझे देखेंगे तो अपना राजा समझेंगे और डर-डरकर इधर-उधर भागेंगे। यदि मैं जंगल में ऊधम मचाऊं और सभी पशुओं को डराऊं तो मज़ा आ जाए !"

यह विचार मन में आते ही गधा लगा यहां-वहां छलांगें भरने और दौड़ने-भागने। अब तो जो पशु उसे देखता, अपने प्राण लेकर भाग जाता। बात की बात में जंगल-भर में हाहाकर मच गया। पशुओं ने आपस में कहना शुरू किया, "आज तो

महाराज मानो पागल हो उठे हैं ! सारे जंगल में दौड़-दौड़कर ऊधम मचा रहे हैं। भगवान जाने, अब हम लोगों पर कौन-सी विपत्ति आने वाली है !"

गधा इस प्रकार ऊधम मचाते-मचाते एक गीदड़ के सामने पहुंचा और उसे डराने के लिए लगा गला फाड़-फाड़कर रेंकने, "चीऽऽपोंऽऽचीऽऽपोंऽऽ !"



गीदड़ ने आंखें फाड़-फाड़कर गधे को देखा। फिर खिलखिला कर कहा, "अहा, गधे जी हैं ! चले हैं शेर बनकर जंगल में ऊधम मचाने और सभी पशुओं को डराने ! परन्तु इतना नहीं सोच सके कि असलियत छिपी नहीं रहती ! तुम्हारी यह 'चीऽऽपोंऽऽचीऽऽपोंऽऽ' तो तुम्हारा सारा भण्डा फोड़ देती है !"

९. विचार से किया हुआ काम हितकर होता है

बकरी ने दिन निकलते ही जंगल की ओर जाने की तैयारी की। जाते-जाते उसने अपने बच्चे से कहा, "बेटा, किवाड़ लगा लो ! देखो, कहीं किवाड़ खोलकर बाहर न चल देना। यदि कोई द्वार पर आकर तुम्हें बुलाए और कहे कि भेड़िये का सत्यानाश हो जाए, तो उसे अपना मित्र समझना और उसीसे मिलना-जुलना। यदि कोई यह बात न कहे, तो उसे अपना शत्रु समझना और उससे मिलने-जुलने का नाम न लेना। समझ गए न ?"

यह कहकर बकरी चल दी और बच्चे ने किवाड़ लगा लिए। बकरी के जाते ही द्वार पर एक भेड़िया आ पहुंचा। वह चुपचाप बकरी की सभी बातें सुन चुका था और उसके बच्चे को खाने की तलाश में था। द्वार पर पहुंचते ही उसने आवाज़ लगाई, "क्या कर रहे हो, मित्र ? किवाड़ तो खोलो ! हाय, हाय, इन भेड़ियों ने कितना ऊधम मचा रखा है ! भगवान करे, इनका सत्यानाश हो जाए !"

भेड़िये की आवाज़ सुनते ही बकरी के बच्चे के कान खड़े हो गए। उसने मन में सोचा, "यह कैसा मित्र है। न बकरी के समान बोलता है, न बकरे के समान !" फिर वह किवाड़ की दराज़ से झांकने लगा। भेड़िया सामने खड़ा ही था। उसपर नज़र पड़ते ही बकरी के बच्चे के होश उड़ गए। उसने मन में कहा, 'बाप रे बाप ! यह तो भेड़िया है ! यदि मैंने इसकी बोली पर विचार न किया होता और किवाड़ खोल दिए होते, तो यह अब तक मुझे चीर-फाड़कर खा डालता !' बस, वह ज़ोर से बोला, "यह तो बताओ, तुम हो कौन ?"

भेड़िये ने उत्तर दिया, "अरे, तुम नहीं जानते ! मैं बकरा हूं बकरा, तुम्हारा मित्र ! बस, खोल दो किवाड़। बाहर ये भेड़िये ऊधम मचा रहे हैं। सत्यानाश हो जाए इनका !"

बकरी के बच्चे ने कहा, "अच्छा, तुम बकरे हो ! फिर तुम्हारी दाढ़ी कहां है और यह आवाज़ भेड़िये जैसी क्यों है ?"

अब तो भेड़िया बहुत शरमाया और वहां से नौ-दो ग्यारह हो गया। बकरी का बच्चा बोला, "धत्तेरे की ! चला था मुझे बुद्धू बनाने ! यदि मैंने अक्ल से काम न लिया होता, तो यह मुझे हड़प जाता। ठीक है, सोच-विचार में ही हित है !"

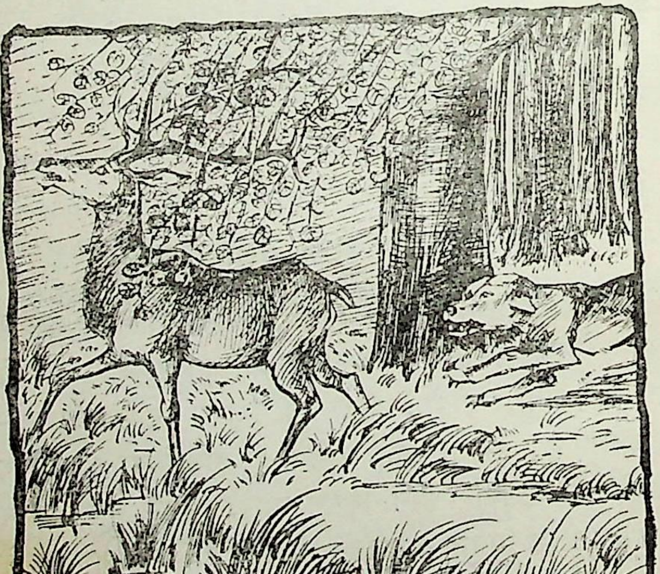
१०. जो काम आए, वही सुन्दर

एक बारहसिंगा झील में पानी पीने पहुंचा। वह जल में अपने शरीर की परछाईं देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और आप ही आप कहने लगा, "ओहो ! भगवान ने मेरा शरीर कितना मनोहर बनाया है। सर तो मानो, सांचे में ही ढाल दिया है। उसपर ये लम्बे-लम्बे फैले-फैले सींग कितने प्यारे, कितने सुन्दर जान पड़ते हैं। इसके सिवाय ये मज़बूत भी बहुत हैं। भला भगवान ने इतने प्यारे, इतने सुन्दर, इतने मज़बूत सींग और किस पशु को दिए हैं ? इस उपकार के लिए मैं कहां तक भगवान के गीत गाऊं ?"

यह कहते-कहते बारहसिंगे की दृष्टि अपने पैरों पर पड़ी। बस, उसका रोम-रोम दुखी हो उठा। वह ठंडी सांस छोड़ते हुए

कहने लगा, "परन्तु ये पैर कितने लम्बे, पतले, कितने सूखे और कितने भद्दे हैं ! हा भगवन्, मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था, जो तुमने ये कुरूप पैर देकर मेरी सारी शोभा, सारी सुन्दरता मिट्टी में मिला दी।"

अभी बारहसिंगा इसी उधेड़बुन में पड़ा हुआ था कि उसके कानों से शिकारी कुत्तों का स्वर टकराया, "भों-भों-भों !" यह



स्वर सुनते ही बारहसिङ्गा सारी उधेड़बुन भूल गया। बस, प्राण लेकर भागा। अपने जिन कुरूप पैरों को देख-देखकर वह जल-कुढ़ रहा था, उन्हींके सहारे वह भागा और इतनी तेज़ी से

भागा कि शिकारी कुत्तों की पकड़ से आगे, बहुत आगे निकल गया।

परन्तु इसी समय बारहसिंगे के लम्बे, छितराए और टेढ़े-मेढ़े सींग एक पेड़ की डालियों में फंसकर रह गए। बारहसिंगा बहुत फड़फड़ाया, ज़ोर लगा-लगाकर मर मिटा, परन्तु डालियों के फंसाव से छुटकारा न पा सका। इतने में शिकारी कुत्ते दौड़ते-दौड़ते उसके पास आ पहुंचे। वे उसपर टूट पड़े और उसका मनोहर शरीर नोचने-फाड़ने लगे।

अब तो मानो बारहसिंगे की आंखें खुल गईं। उसने मरते-मरते कहा, "मेरी समझ में जो पैर लम्बे, पतले, सूखे और भद्दे थे, वे ही मेरे प्राण बचाना चाहते थे। परन्तु जो सींग बड़े प्यारे, बड़े सुन्दर जान पड़ते थे, वे ही मेरे प्राणों के ग्राहक निकले! सच है, प्राणी जिस ओर से निश्चिन्त रहता है, बहुधा उसी ओर से धोखा खाता है। यदि मैंने पहले ही समझ लिया होता कि वास्तव में सुन्दर तो वह है, जो अपने काम आता है, तो आज मुझे इस प्रकार धोखा न खाना पड़ता!"

११. अवसरवादी का कभी भला नहीं होता

वन पर किसका अधिकार रहे, इस प्रश्न को लेकर पशुओं और पक्षियों में ज़ोरों से लड़ाई छिड़ गई। पशुओं की ओर से सिंह, रीछ और हाथी जैसे भयंकर जीवधारी लड़ते थे और पक्षियों की ओर से गरुड़, गिद्ध और उल्लू जैसे मांसाहारी प्राणी मारा-मार

मचाते थे। कभी पशुओं का दल विजय पाता था, और कभी पक्षियों का। इस प्रकार यह लड़ाई बहुत दिन तक चलती रही; परन्तु हार-जीत का कुछ फैसला न हुआ।

इस लड़ाई में एक जीवधारी ऐसा भी था जो अवसरवादी था और सदा विजय पाने वाले दल में जा मिलता था और अपना बड़प्पन बघारता फिरता था। लड़ाई की चिन्ता में फंसे रहने के कारण, उसे न तो पशु ही पहचान सके, और न पक्षी ही। परन्तु जब लड़ाई बन्द हुई और दोनों दलों में मेल-जोल हो गया तो उन्होंने इस नये जीवधारी के विषय में पूछ-ताछ की। खोज करने पर उन्हें पता चला कि वह जीवधारी और कोई नहीं, चमगादड़ है, जो धोखा देकर दोनों दलों में मिलना चाहता है।

बस, पशुओं ने चमगादड़ को बुला भेजा और उससे कहा, "देखो जी, धोखा देनेवाले का कभी भला नहीं होता! हम तुमको अपनी जाति में नहीं मिला सकते। तुम्हारे ये बड़े-बड़े पंख हैं न? फिर तुम पशु कैसे हुए?"

यह सुनकर चमगादड़ दौड़ा-दौड़ा पक्षियों के पास पहुंचा। पक्षियों ने उसे कहा, "रहने भी दो, आ गए हम लोगों को धोखा देने और बुद्धू बनाने! बताओ, तुम्हारी चोंच कहां है; पर कहां हैं? फिर, तुम्हारे ये लम्बे-लम्बे कान भी हैं! ऐसे कान तो चूहों के होते हैं। जाओ, अपना काम देखो। हम तुम्हें अपनी जाति में नहीं मिला सकते।"

बेचारा चमगादड़ ठण्डी-ठण्डी सांसें भरते हुए चूहों के पास गया और उनसे कहने लगा, "भाइयो, मुझे अपनी जाति में मिला लो। देखो, मेरे कितने लम्बे-लम्बे कान हैं! फिर, जिस तरह

तुम्हारे बच्चे दूध पीते हैं, उसी तरह मेरे बच्चे भी दूध पीते हैं।"

चूहे हंसे और बोले, "आ गए धोखा देने और लगे कहने कि मुझे अपनी जाति में मिला लो! अच्छा बताओ, क्या तुम्हारी पूंछ है और तुम पैरों से चलना जानते हो? फिर तुम्हारे इतने बड़े-बड़े पंख हैं और तुम इनसे आकाश में उड़ते-फिरते हो। भला कहीं चूहों के भी इतने बड़े-बड़े पंख होते हैं और वे आकाश में उड़ते फिरते हैं? देखो भाई, बुरा मानने की ज़रूरत नहीं; तुम न चूहे हो, न चूहों की जाति में मिल सकते हो!"

अब चमगादड़ क्या करता, कहां जाता? उसकी ऐसी दुर्गति हुई कि बेचारा कहीं का न रहा! बस, वह चुपचाप पेड़ पर उलटा जा लटका। तब से वह रात के अंधेरे में अकेला ही उड़ता है।

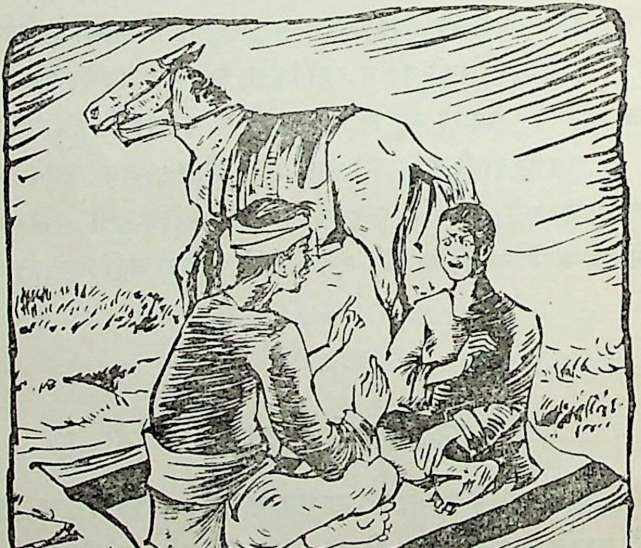
अवसरवादी का कभी भला नहीं होता। जब उसका भेद खुल जाता है, तब कोई उसपर विश्वास नहीं करता और अन्त में वह मारे लज्जा के कहीं मुंह दिखाने लायक नहीं रहता।

१२. छाया से मोह, काया से बिछोह

यात्री चलते-चलते इतना थक गया कि उसमें पैर उठाने का भी साहस न रहा। पास ही एक छोटा-सा गांव था। यात्री किसी तरह पैर घसीटते-घसीटते उस गांव में पहुंचा। वहां उसने एक घोड़ा किराये पर लिया और उसीपर बैठकर रास्ता नापना शुरू किया। उसके साथ-साथ घोड़े का मालिक भी चला।

गरमी का समय था। आसमान जैसे आग बरसा रहा था। यात्री इतना थक चुका था कि वह घोड़े पर चढ़कर भी आगे न बढ़ सका। उसने चाहा कि कहीं थोडी देर ठहरकर सुस्ता लिया जाए। परन्तु दूर-दूर तक कहीं ऐसा स्थान नज़र न आता था, जिसकी छाया में बैठकर थोड़ी देर सुस्ता लेता। आखिर उसने बीच रास्ते में घोड़ा खड़ा कर दिया और उसीकी छाया में बैठकर सुस्ताने का विचार किया।

यात्री घोड़े की छाया में बैठ तो गया; परन्तु घोड़े का मालिक उसका यह आराम भी न देख सका। वह बिगड़ उठा और बोला,



"हटो यहां से ! मैंने तुम्हें किराये पर घोड़ा दिया है, कुछ उसकी छाया नहीं दी है। इसलिए छाया पर मेरा अधिकार है और मैं

छाया में बैठूंगा। अब सीधे-सीधे हटते हो यहां से या नहीं ?"

यात्री चकित होकर बोला, "पागल तो नहीं हो। मनमाना किराया लेने पर भी ऐसी बातें करते हो ! जब मैंने घोड़ा किराये पर ले लिया, तब उसकी छाया पर भी मेरा अधिकार हो गया। जब तक मैं घोड़ा अपने पास रखूंगा, तब तक उसकी छाया का भी उपयोग करूंगा। खैरियत इसीमें है कि बस, चुपचाप चलते-फिरते नज़र आओ।"

घोड़े का मालिक गरजकर बोला, "कैसे बेवकूफ हो जी ! ज़रा-सी बात भी नहीं समझते। तुमने किराये पर घोड़ा लिया है; बस घोड़ा तुम्हारा है। तुमने किराये पर छाया ली ही नहीं, फिर वह तुम्हारी कैसे हुई ? सीधे-सीधे न उठोगे तो मैं धक्के मार-मारकर उठा दूंगा ! बोलो, क्या कहते हो ?"

इस प्रकार दोनों एक-दूसरे को बुरा-भला बताने लगे। सच-मुच दोनों ही एक सांचे के ढले थे। आंख के अन्धे और गांठ के पूरे थे—बुद्धि से भी दूर थे, समझ से भी दूर थे। 'तू-तू, मैं-मैं' करते-करते आपस में भिड़ गए और लगे एक-दूसरे को लति-याने-धकियाने। उनको लड़ते-भिड़ते देखकर घोड़ा भी भड़क उठा और प्राण लेकर वहां से इस प्रकार भागा कि फिर उसका पता भी न चला।

अब तो यात्री बहुत खुश हुआ और ताली बजाते-बजाते बोला, "और बैठ ले छाया में। बस, अब रोयाकर काया के लिए। अभागा कहीं का।"

घोड़े का मालिक माथा पीटते-पीटते बोला, "हाय, मैंने

छाया का मोह क्या किया, काया से भी हाथ धोया। यह मुझे ठीक ही दण्ड मिला।"

१३. कपटी पर विश्वास मत करो

एक भेड़ों के रेवड़ के पीछे एक भेड़िया बहुत दिनों से लगा हुआ था। परन्तु भेड़ों के साथ किसी प्रकार की शत्रुता प्रकट नहीं करता था। फिर भी चरवाहा उसे दुष्ट समझता था और उसपर कड़ी नज़र रखता था।

इस प्रकार बहुत समय निकल गया। जब चरवाहे ने देखा कि भेड़िया बराबर रेवड़ के साथ-साथ रहता है, और भेड़ों को किसी प्रकार की हानि नहीं पहुंचाता, तो वह धीरे-धीरे उसपर विश्वास करने लगा—उसे मित्र समझने लगा। वह यहां तक सोचने लगा कि मैं भेड़ों के साथ रहूं, चाहे न रहूं; भेडिया भूलकर भी उनको हानि नहीं पहुंचा सकता।

एक बार चरवाहे को कहीं जाना पड़ा। उसने भेड़िये से कहा, "मित्र, मैं तो किसी काम से बाहर जा रहा हूं। ठीक एक हफ्ते बाद लौट सकूंगा। तब तक भेड़ों की रखवाली तुम्हींको करनी पड़ेगी।"

यह कहकर चरवाहा तो चला गया; यहां भेड़िया खुलकर खेलने लगा। इतने दिन तक धीरज से काम लेता रहा था, अब मौका हाथ आया तो रोज़ बेखटके अच्छी-अच्छी भेड़ें मारकर खाने लगा। जब चरवाहे के आने का समय हुआ तो चुपके से

न जाने कहां रफूचक्कर हो गया।

एक हफ्ता बीतते ही चरवाहा लौटा और जंगल में पहुंचा। वहां जीवित भेड़ों का पता भी न था; हां, मरी हुई भेड़ों की हड्डियों का ढेर वहां अवश्य लगा हुआ था। जगह-जगह उनकी खालें, धड़, सर, मांस-पिण्ड आदि बिखरे पड़े थे। अपनी जमापूंजी का यह सर्वनाश देखकर चरवाहा लगा फूट-फूटकर रोने और हाथ मल-मलकर कहने, "हाय! मैंने कितनी बड़ी मूर्खता की, जो उस कपटी भेड़िये के आचरण पर विश्वास किया—उसे मित्र समझ लिया।"

१४. भलामानस घूस नहीं देता

एक चोर बहुत ज़्यादा चालाक था। वह एक दिन, रात में किसी गृहस्थ के घर चोरी करने गया। गृहस्थ ने एक कुत्ता पाल रखा था। कुत्ता बड़ा स्वामिभक्त था। वह रात-रात-भर जागता और घर की रखवाली करता था। चोर को देखते ही उसने ज़ोर-ज़ोर से गुर्राना और भौंकना शुरू किया।

चोर ने सोचा, पहले कुत्ते का मुंह बन्द करना चाहिए, नहीं तो यह भौंक-भौंककर घरवालों को जगा देगा और मुझे यहां से खाली हाथ रफूचक्कर होना पड़ेगा। बस, उसने चतुराई और चालाकी से काम लिया और वह लगा कुत्ते को बार-बार पुचकारने तथा उसके सामने मांस के लोथड़े फेंकने।

कुत्ता भी कुछ कम अक्लमन्द नहीं था। वह लगा जल्दी-

जल्दी मांस के लोथड़े निगलने और चोर को जली-कटी सुनाने, "तुमको देखते ही मुझे सन्देह हो गया था कि तुम भले आदमी



नहीं हो। तभी तो मुझे फुसलाने के लिए पुचकारते हो और मांस के लोथड़े खिलाते हो। परन्तु मैं जानता हूं कि रिश्वत के लोभ से काम निकालनेवाला आदमी भला नहीं होता। अच्छा है, तुम मुझे पुचकारते जाओ; मांस के लोथड़े भी खिलाते जाओ। परन्तु मैं अपने कर्तव्य से मुंह नहीं मोड़ूंगा, लगातार शोर करूंगा और तुम्हें पकड़वा दूंगा।"

कुत्ते के ये शब्द सुने, तो चोर निराश हो गया और धीरे-धीरे वहां से चलता बना।

१५. खाँड़ खनै जो और को, ताको कूप तयार

सिंह बीमार होकर अपनी गुफा में पड़ रहा। यह देखकर जंगल के सभी पशु बहुत चिन्तित हुए। वे प्रतिदिन उसकी खबर लेने जाते, तरह-तरह से उसकी दवा-दारू कराते और बराबर उसकी सेवा-टहल में लगे रहते। परन्तु, उनकी यह दौड़-धूप, यह दवा-दारू और यह सेवा-टहल किसी काम न आई। न तो सिंह का रोग दूर हुआ, न उसे कुछ आराम ही मिला।

एक दिन सिंह ने सभी पशुओं पर नज़र डालते-डालते कहा, "गीदड़ दिखाई नहीं देता। मैं कब से बीमार पड़ा हूं; परन्तु वह एक दिन भी मेरी खबर लेने नहीं आया। कुछ पता है उसका? वह तुम लोगों से मिलता-जुलता है या नहीं?"

भेड़िया जैसे इसी मौके की तलाश में था। वह गीदड़ से जलता था, सिंह की बातें सुनते ही हाथ बांधकर बोला, "उसका नाम न लीजिए सरकार। आजकल उसे इतना घमण्ड हो गया है कि वह किसीसे सीधे मुंह बात भी नहीं करता। मैंने उससे कहा भी—आजकल महाराज बहुत बीमार हैं; जाओ, उनकी खबर ले आओ! परन्तु, उसने उत्तर दिया—भाड़ में जाएं महाराज; जिस दिन वे मरेंगे; मैं स्वयं जंगल का राजा बनूंगा और आनन्द मनाऊंगा। मैं तो उसकी बातें सुनकर सन्न रह गया सरकार!"

इसी समय अचानक गीदड़ भी वहां आ पहुंचा। उसके कानों में भेड़िये की बातें पड़ गईं; इसलिए वह डरते-डरते सिंह के सामने खड़ा हो रहा। उसपर नज़र पड़ते ही सिंह का क्रोध भड़क उठा और वह गुर्राकर बोला, "क्यों रे बदमाश, मैं इतने दिन से बीमार पड़ा हूं और तू एक बार भी मेरी खबर लेने नहीं आया? सुना

है, आजकल तुझे बड़ा घमण्ड हो गया है। बोल, कहां था अब तक ?"

गीदड़ ने हाथ बांधकर कहा, "अन्नदाता, जिस दिन से आप बीमार पड़े हैं, उस दिन से मैं घड़ी-भर भी आराम से नहीं बैठा। यह ठीक है कि सब लोग यहां आपकी सेवा-टहल में लगे हुए हैं; परन्तु मैं तो आपकी बीमारी दूर करने के लिए दवा की तलाश में रहा हूं—भूख-प्यास सहते हुए जंगल-जंगल भटकता फिरा हूं। इतनी दौड़-धूप करने के बाद अभी-अभी एक वैद्यजी मिले। जब मैंने उनको आपकी बीमारी का हाल सुनाया, तब उन्होंने हंसते-हंसते कहा—इतनी चिन्ता करने की क्या ज़रूरत है ? यह कौन-सा बड़ा रोग है; चुटकी बजाते फुर्र हो जाएगा ! ज़रा-सी तो दवा है, इस…"

सिंह की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। वह गीदड़ की बात काटकर बोला, "तभी तो मैं कहता था कि गीदड़ मेरा परम मित्र है। वह बिना कारण इतने दिनों तक गायब नहीं रह सकता। अच्छा, तो तुम पूछ आए वैद्यजी से वह दवा ?"

गीदड़ ने उत्तर दिया, "अन्नदाता, भला मैं वैद्यजी से दवा पूछे बिना कैसे मान सकता था। पहले तो वे टाल-मटोल करते रहे; परन्तु जब मैं हाथ धोकर उनके पीछे पड़ गया, तब उन्होंने बताया—जाओ, महाराज से कह दो, यदि वे बीमारी दूर करना चाहें; तो भेड़िये का ताज़ा चमड़ा ओढ़ लें। बस, यही इस रोग की सबसे उत्तम दवा है। वे ज्योंही भेड़िये का ताज़ा चमड़ा ओढ़ेंगे, त्योंही उनकी बीमारी फुर्र हो जाएगी !"

यह सुनते ही सिंह गरजकर भेड़िये पर टूट पड़ा और उसकी

खाल उधेड़ने लगा। अब तो गीदड़ मन ही मन प्रसन्न होकर बोला, "धत्तेरे की ! मेरी बुराई करने चला था, खुद ही बुराई का शिकार हो गया ! तभी तो किसीने कहा है—खाँड़ खनै जो और को, ताको कूप तयार !"

१६. काना कब चाहे, किसीके दो आंखें हों

शिकारी ने फन्दा लगाया और अचानक एक सियार उसमें फंस गया। अब तो सियार बहुत घबराया और फन्दे से छूटने के लिए लगा उछल-कूद मचाने। परन्तु उसकी उछल-कूद ने कुछ काम न दिया। वह फन्दे से न छूट सका—न छूट सका।

इतने में शिकारी आ पहुंचा और सियार को मारने के लिए तैयार हुआ। सियार ने रो-रोकर उससे प्रार्थना की, "भला मेरे प्राण लेने से आपका क्या फायदा होगा ? कृपाकर मुझे छोड़ दीजिए। मैं ज़िन्दा रहूंगा तो, आपका उपकार मानूंगा।"

सियार के रोने-गिड़गिड़ाने पर शिकारी को दया आ गई। उसने सियार को छोड़ तो दिया, परन्तु उसकी पूंछ काट ली। सियार पूंछ खोकर वहां से भागा और दुखी होकर मन में सोचने लगा, 'पूंछ कट जाने से तो मेरी सारी सुन्दरता नष्ट हो गई। अब मैं कैसे अपने जाति-भाइयों के सामने जाऊंगा और कैसे उन्हें अपना मुंह दिखाऊंगा। जब वे मुझसे पूछेंगे कि अरे, तेरी पूंछ कहां गई, तो मैं उनको क्या उत्तर दूंगा ! हाय-हाय, इससे तो यही अच्छा था कि शिकारी मुझे जान से मार डालता।'

आखिर सियार की समझ में एक बात आई, 'यदि मेरे सब जाति-भाई अपनी-अपनी पूंछ कटवा लें, तो कैसा रहे ? वाह, तब तो सबकी सुन्दरता नष्ट हो जाएगी और वे मेरे ही समान दीखने लगेंगे ! फिर मुझे उनके बीच रहते शर्म कैसी ?'

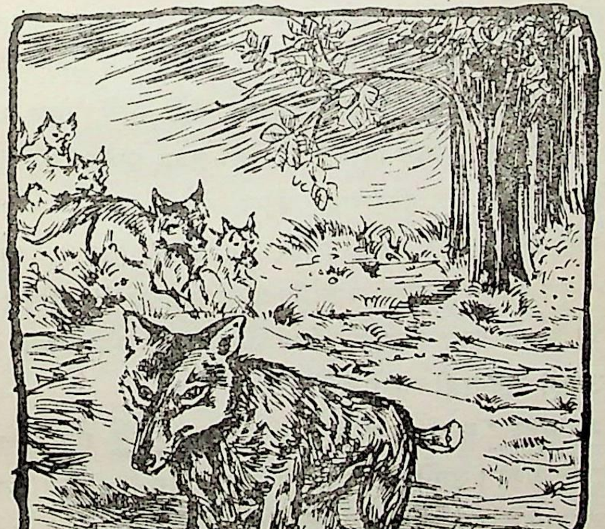
बस, पुंछकटा सियार जंगल में घुसा और 'हुआ-हुआ' की आवाज़ें लगाने लगा। उधर से दूसरे सियारों ने भी 'हुआ-हुआ' की आवाज़ें लगाईं और वे उसकी ओर दौड़ पड़े। जब सब सियार इकट्ठे हो गए, तो पुंछकटे सियार ने अकड़कर व्याख्यान फटकारना शुरू किया :

"भाइयो, ज़रा मेरी पूंछ की ओर देखिए। बताइए, वह कहां गई ? वह मैंने कटवाकर फेंक दी। आप पूछेंगे—क्यों ? अच्छा सुनिए ! बात यह है कि पूंछ एक बेकार बोझ के समान हमारे पीछे लटकी हुई है। फिर इससे हमारी सुन्दरता भी नष्ट होती है। आदमी को देखिए, वह कभी पूंछ नहीं रखता और सदा पूंछ की हंसी उड़ाता है। पूंछ न रखने से ही आदमी इतना सुन्दर दिखता है। इसलिए मैंने भी अपनी पूंछ कटवाकर फेंक दी है। अब मैं सुन्दर तो दिखता ही हूं, बड़े आराम से भी रहता हूं। बस, आप लोग भी अपनी-अपनी पूंछें कटवाकर यह बेकार बोझ शरीर से दूर कीजिए, मेरे समान सुन्दर बनिए और आराम से रहिए।"

पुंछकटे सियार का यह व्याख्यान सुनते-सुनते एक बूढ़ा सियार ज़ोरों से हंसा और बोला, "भाइयो, यह पुंछकटा बिलकुल झूठा है; इसका व्याख्यान बिलकुल झूठा है। किसी तरह इसकी पूंछ कट गई है और इसे शर्म मालूम होती है। इसीलिए यह ये

बातें बघार रहा है और हम लोगों को बुद्धू बना रहा है। मेरा कहना मानो। इसकी बातों में आने की आवश्यकता नहीं। भला काना कब चाहेगा कि किसीके दो आंखें हों ? वह तो यही चाहेगा कि मेरी तरह सभी एक आंख वाले हों। यदि इसकी पूंछ फिर से निकल आए, तो यह इस तरह की नसीहतें झट भूल जाए।"

इसके बाद बूढ़े सियार ने लाल-लाल आंखें दिखाते हुए उस पुंछकटे सियार से कहा, "अबे पुंछकटे, तू यहां से जाएगा भी या व्याख्यान ही फटकारता रहेगा ? चल, हट; मुंह काला कर !"



यह सुनते ही पुंछकटे सियार ने शर्म से सर झुकाकर अपनी राह ली।

१७. हर चीज़ काम आती है

गड़रिये के पास बहुत-सी भेड़ें थीं। उनकी रखवाली के लिए उसने कुछ कुत्ते भी रख छोड़े थे। वह भेड़ों को दिन-भर जंगल में चराता रहता था। शाम होते-होते उनको लेकर घर लौट पड़ता श्रौर बाड़े में बन्द कर देता था। फिर उनकी ज़रा भी खबर न लेता था, परन्तु कुत्तों के श्राराम का पूरा-पूरा खयाल रखता था। उनको बड़ी सावधानी से खिलाता-पिलाता श्रौर भूलकर भी भूखों न मरने देता था।

यह देख-देखकर भेड़ों को बड़ा दुःख होता था। एक दिन उन्होंने गड़रिये से कहा, "ताज्जुब की बात है, सरकार! हम तो हर तरह श्रापके काम श्राती हैं, फिर भी श्राप हमारी कोई खबर नहीं लेते! परन्तु कुत्ते श्रापके किसी काम नहीं श्राते, फिर भी श्राप उनको खूब खिलाते-पिलाते श्रौर हर तरह श्राराम पहुंचाते हैं। देखिए, श्राप सदा हमारा ऊन काटते, उसके कम्बल बनाते श्रौर उन्हें बेच-बेचकर रुपये कमाते हैं। इनके सिवाय, श्राप हमारा दूध पीते श्रौर मांस खाते हैं। भला बताइए तो, इस तरह कुत्ते भी श्रापके काम श्राते हैं? फिर श्राप इतनी सावधानी से क्यों उनकी रखवाली करते हैं?"

यह सुनकर गड़रिया तो कुछ न बोला; परन्तु एक कुत्ता चुप न रह सका। उसने पट् से उत्तर दिया, "पगली हो तुम सब, जैसे भगवान ने तुम्हें बुद्धि नाम की कोई चीज़ नहीं दी। ज़रा सोचो, यदि हम लोग न हों, तो तुम्हारी रखवाली कौन करे? फिर भेड़िये तुम्हें मारकर खा जाएं या नहीं? श्रब कहो, हम लोग मालिक के काम श्राते हैं या नहीं? हम तुम्हारी रखवाली

करते हैं; इसीलिए तो मालिक हमारे सुख-दुःख का इतना खयाल रखते हैं।"

भेड़ों ने कहा, "ठीक है! मान लिया हमने, तुम मालिक के नहीं, हमारे ही काम आते हो। अब हमारी समझ में आ गया कि संसार में ऐसी कोई चीज़ नहीं, जो बेकाम हो; वह किसी न किसी काम अवश्य आती है।"

१८. गुण भला या संख्या

एक दिन वन के पशुओं में एक प्रश्न उठ खड़ा हुआ कि कौन पशु सबसे अधिक बच्चे पैदा करता है।

रीछी बोली, "मैं! एक बार में दो-दो।"

गीदड़ी बोली, "नहीं, मैं! एक बार में चार-चार!"

शूकरी बोला, "अरे नहीं, मैं! एक बार में आठ-आठ, दस-दस!"

सिंहनी चुपचाप बैठी थी, मानो उनकी बकवास वह सुन ही नहीं रही थी। हिरनी उससे बोली, "महारानीजी, आप कैसे चुप हैं? आप भी तो कुछ कहिए।"

सिंहनी बोली, "भला मैं क्या कहूं! मैं तो एक बार में एक ही बच्चा पैदा करती हूं—एक, केवल एक! परन्तु वह सिंह होता है, और तुम सबपर—सारे वन पर बेखटके राज करता है!"



बन्दरी बोली, "सच है, गुण के सामने संख्या की अधिकता व्यर्थ है।"

१९. सब काम सहयोग से चलते हैं

एक बार शरीर के पैर, हाथ, मुंह, दांत आदि सब अंगों ने मिलकर पेट से कहा, "मियां, कुछ करते-धरते भी हो या बैठे-बैठे माल ही चरते रहते हो ! एक हम हैं कि काम करते-करते मरे जा रहे हैं, और एक तुम हो कि माल चरते-चरते थकते भी नहीं। नहीं भाई, अब इस तरह काम नहीं चलेगा ! कुछ करना-धरना हो तो

वैसा कहो; नहीं तो आज से हमारा रास्ता अलग है, तुम्हारा रास्ता अलग !"

पेट ने उत्तर दिया, "कैसी बातें करते हो भाइयो ! क्या तुम समझते हो कि मैं कुछ करता-धरता नहीं, बैठे-बैठे माल ही चरता रहता हूं ?"

पेट का यह उत्तर सुनकर पैरों ने दूसरे अंगों से कहा, "क्या समझे तुम लोग ? ये मियां करें-धरेंगे तो कुछ नहीं; बस, योंही बातें बनाएंगे और माल चरेंगे ! भाई, हम तो आज से इस पेट के लिए खाना-पीना बंटोरने कहीं जाएंगे नहीं; अब तुम्हारे जी में जैसा आए, वैसा करो !"

हाथों ने कहा, "तो तुम हमें क्या समझते हो ! हम भी आज से इसके लिए उंगलियां हिलाने वाले नहीं।"

मुंह ने कहा, "और मैं भी कभी इसके लिए एक कौर निगलूं तो मेरे मुंह पर थूक देना !"

दांतों ने कहा, "कसम ले लो, जो हम कभी इसके लिए एक भी दाना चबाएं—गिर भले ही जाएं !"

इस प्रकार सब अंगों की सलाह पक्की हो गई और उन्होंने हड़ताल कर दी। पैरों ने चलना-फिरना, हाथों ने उंगलियां हिलाना, मुंह ने कौर निगलना और दांतों ने भोजन चबाना छोड़ दिया। इस हड़ताल का नतीजा यह निकला कि कुछ ही दिन बाद सब दुर्बल हो गए—सूखे-सूखे-से, मरे-मरे-से दिखने लगे।

सब सोचने लगे कि अब क्या किया जाए।

पैरों ने कहा, "यार, यह क्या हुआ ! हमसे तो चलते-फिरते भी नहीं बनता !"

हाथों ने कहा, "हम अपनी किससे कहें ! हमारी तो उंगलियां भी नहीं हिलतीं !"

मुंह ने कहा, "विद्यामाई की कसम, मैं तो अच्छी तरह बोल भी नहीं सकता !"

दांतों ने कहा, "हम समझ गए ! न हम हड़ताल करते, न यह मुसीबत आती ! हमारा कहना मानो, इस हड़ताल-पड़ताल पर लात मारो ! अपना-अपना काम देखो। इसीमें आनन्द है।"

यह सुनते ही सब अंग अपना-अपना काम करने लगे और कुछ समय में उनकी हालत अच्छी हो गई। तब पेट ने एक दिन उनसे कहा, "अब आया तुम्हारी समझ में कि मैं क्या कुछ करता हूं ! सुनो, पैर इधर-उधर खाने-पीने का सामान बटोरने जाते हैं, हाथ उसे सहेज-संवारकर मुंह तक पहुंचाते हैं और दांत चबाकर मुझे दे देते हैं। मैं चुपचाप उसका रस बनाया करता हूं; और फिर वह रस तुम सबको सौंप देता हूं। उसीसे तुम मज़बूत रहते हो। इसी प्रकार संसार के सब काम एक-दूसरे के सहयोग से होते हैं।"

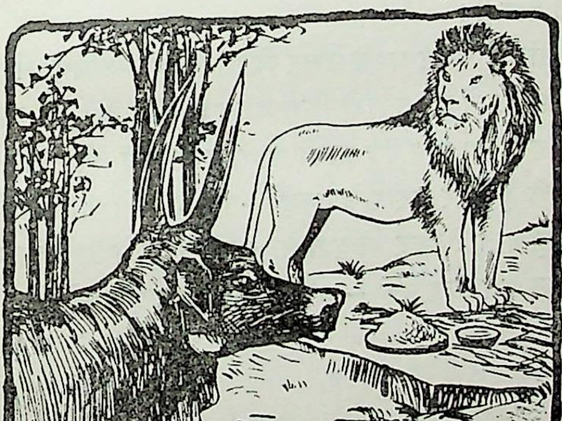
२०. चतुर वह, जो छल ताड़ जाए

सिंह की नज़र सांड पर पड़ी। बस, उसके मुंह में पानी भर आया। वह सोचने लगा, 'जैसे बने, इस सांड को मारकर खाना चाहिए। परन्तु यह खूब तगड़ा, खूब मज़बूत है। इसे मारना सरल नहीं है। मैंने इसपर हमला किया, और कहीं यह मुझसे भिड़

गया—मुझपर अपने लम्बे-लम्बे सींग चला बैठा तो शायद मुझे ही लेने के देने पड़ जाएंगे। फिर करना क्या चाहिए ?'

आखिर सिंह को एक उपाय सूझा। वह सांड के पास पहुंचा और मुसकराकर बोला, "सांड भाई, आज मैंने जंगल के कुछ पशुओं को निमन्त्रण दिया है। आप भी पधारने की कृपा कीजिए—यही कोई दो घण्टे बाद। मैंने तरह-तरह के भोजन तैयार करवाए हैं। उनमें कुछ व्यंजन ऐसे भी हैं, जो आपने कभी न खाए होंगे। इसलिए आप अवश्य पधारिए—देखिए, भूलिए नहीं!"

सांड ठीक समय पर सिंह के यहां जा पहुंचा, तो देखता क्या है कि सामने कई थाल मौजूद हैं, जिनमें से कुछ तो खाली हैं और



कुछ दूब, घास, दाने आदि पदार्थों से भरे हुए हैं। सांड पर नज़र पड़ते ही सिंह बहुत प्रसन्न हुआ और मुसकराते-मुसकराते बोला,

"आइए, विराजिए ! भोजन तैयार है; आप खाना शुरू कर दीजिए। मैं अभी इन खाली थालों में नये-नये पदार्थ परोसता हूं। और लोगों की चिन्ता छोड़िए; वे फिर आते रहेंगे। यह आप खड़े-खड़े क्या करते हैं ! बैठिए न !"

सिंह सोच रहा था कि सांड ज्योंही भोजन करने के लिए झुके त्योंही मैं इसकी गर्दन तोड़ डालूं। परन्तु सांड भोजन के थाल देखते-देखते उलटे पैरों लौट पड़ा। सिंह घबराकर बोला, "हैं-हैं, यह आप करते क्या हैं ! मैंने आपके लिए ही इतनी तैयारी की है, और आप इस तरह भागे जा रहे हैं ! कृपा कर बैठिए तो सही, मैं अभी, घड़ी-भर में इन खाली थालों में नये-नये पदार्थ परोसे देता हूं।"

सांड ने चलते-चलते उत्तर दिया, "क्षमा कीजिए, मैं समझ गया कि आपने यह तैयारी किस मतलब से की है। मैं यह भी समझ गया कि आप इन खाली थालों में कौन-से नये पदार्थ परोसने वाले हैं। मेरे शरीर के टुकड़े—सो भी अपने खाने के लिए ! है न यही बात ? फिर तो यहां से भागने में ही मेरी भलाई है। छली का छल ताड़ सकूं—अभी इतनी चतुराई मुझमें है।"

२१. दो लड़ते हैं तो तीसरा लाभ उठाता है

शेर भी बलवान था, रीछ भी बलवान था। शेर भी तगड़ा था, रीछ भी तगड़ा था। न शेर रीछ से डरता था, न रीछ शेर से डरता था। एक दिन दोनों शिकार की तलाश में निकले।

अचानक उनकी नज़र एक हिरन पर पड़ी और उन्होंने एकसाथ उसे घेर लिया। दुर्बल हिरन इस मुसीबत में फंसकर बहुत घबराया। भला, वह एक जैसे दो-दो बलवान और तगड़े दुश्मनों से कैसे अपना बचाव करता। बेचारे को बात की बात में अपने प्राणों से हाथ धोने पड़े।

जब शेर ने हिरन को चीर-फाड़कर खाना चाहा, तो रीछ ने गरजकर उससे कहा, "बस-बस, हिरन से दूर ही रहिए! यह मेरा शिकार है और मैं ही इसे खानेवाला हूं। शर्म की बात है कि आप दूसरे के मारे हुए शिकार पर भी ललचाते हैं। जाइए, अपना रास्ता नापिए। मेरे सामने आपका यह अंधेर नहीं चलेगा।"

शेर दहाड़कर बोला, "अबे रीछ के बच्चे, होश में आ! अंधेर मैं करता हूं या तू? यह शिकार मेरा है या तेरा? इसीका नाम है—छोटे मुंह, बड़ी बात! मूर्ख कहीं का! खबरदार अब जो कहीं ज़बान चलाई, तो याद रख, मैं शेर हूं शेर! बात की बात में ऐसा मज़ा चखाऊंगा कि तू भी क्या कहेगा।"

रीछ भी दबनेवाला नहीं था। उसने ईंट का जवाब पत्थर से दिया, "क्या कहा, मज़ा चखाएगा। तू बिल्ली का बच्चा मुझ रीछ को मज़ा चखाएगा। जान पड़ता है, आज मेरे ही हाथों तेरी मौत लिखी है। आ, ज़रा मिला तो पंजा; देखूं, तूने अपनी मां का कितना दूध पिया है!"

इस 'तू-तू, मैं-मैं' का फल यह हुआ कि दोनों उलझ पड़े और लगे गरज-गरजकर, दहाड़-दहाड़कर एक-दूसरे पर अपने-अपने ंजे चलाने और दांत गड़ाने। आखिर दोनों लड़ते-लड़ते बुरी

तरह लोहू-लुहान होकर धरती पर गिर पड़े और गिरते ही बेहोश हो गए।

एक गीदड़ दूर खड़ा-खड़ा यह सब तमाशा देख रहा था। जब उसने समझ लिया कि दोनों लोहू-लुहान होकर धरती पर गिर पड़े हैं और देर तक होश में आनेवाले नहीं हैं, तो वह उछ-लता-कूदता हिरन के पास आया और उसे मज़े से चीर-फाड़कर खाने लगा।

इधर कुछ समय बीतने पर शेर होश में आया तो गीदड़ को हिरन पर हाथ साफ करते देख पछताने लगा और कराहते-करा-हते बोला, "हाय ! हम लोग भी कितने मूर्ख हैं। आपस में इतनी देर तक मारकाट मचाते रहे, लोहू-लुहान होते रहे, तो क्या इसी बदमाश गीदड़ को लाभ पहुंचाने के लिए ? सच कहा है किसी समझदार ने, कि जब दो लड़ते हैं, तो तीसरा लाभ उठाता है।"

२२. उलटी राय का फल बुरा होता है

किसी आदमी ने एक गधा और एक बकरा पाल रखा था। वह गधे पर बोझ ढोता था। इसलिए उसे घास, दाना, पानी आदि देने का विशेष ध्यान रखता था।

गधे पर मालिक की यह विशेष कृपा देख-देखकर बकरा मन ही मन जलता-भुनता रहता था और सोचने लगता था कि गधे को मालिक की नज़र में गिराने के लिए क्या करना चाहिए।

सोच-विचार करते-करते बकरे की समझ में एक उपाय

आया। उसने एक दिन गधे से कहा, "भाई, मालिक ने मुझे तो खुला छोड़ रखा है। मैं जहां चाहता हूं, वहीं जाता हूं और मन-मानी उछल-कूद मचाता हूं। परन्तु मेरी समझ में नहीं आता कि वह तुम्हारे साथ क्यों इतना बुरा व्यवहार करता है। रोज़ तुम्हारी पीठ पर बोझ लादता है; फिर तुम्हें न जाने, कहां-कहां घसीटता फिरता है।"

गधा बोला, "मालिक का यह व्यवहार मुझे भी बहुत अखरता है; परन्तु उससे बचने का उपाय क्या है?"



बकरे ने कहा, "उपाय? अरे, उपाय तो बहुत सरल है। एक दिन बीमारी का बहाना बनाओ, किसी गढ़े में गिर पड़ो, और फिर मज़े से कुछ दिन तक आराम करो—बैठे-बैठे खाओ-पिओ।"

गधा सीधा-सादा तो था ही, बकरे की बातों में आ गया।

उसी दिन जान-बूझकर गढ़े में जा गिरा। परिणामस्वरूप इतना घायल हुआ कि कुछ दिन तक चलने-फिरने लायक भी न रहा। आखिर मालिक ने पशुओं के डाक्टर को बुलाया। डाक्टर ने गधे को देखकर और फिर मालिक से कहा, "कुछ दिन तक इसे आराम से पड़ा रहने दो। घावों पर बकरे की चर्बी की मालिश करो। धीरे-धीरे अच्छा हो जाएगा।"

अब क्या था, मालिक ने बकरे को काटने के लिए छुरी उठाई। यह देखते ही बकरे ने रोते-रोते कहा, "हाय-हाय, मेरी बुद्धि में आग लगी थी, जो मैंने गधे को उलटी राय दी थी। मुझे क्या मालूम था कि जो दूसरों को गिराने के लिए छल-फरेब से काम लेता है, वह स्वयं ही चक्कर में फंस जाता है।"

२३. दूसरे को दुःख पहुंचाने वाले का कभी भला नहीं होता

मधुमक्खी ने धीरे-धीरे अपना छत्ता बना लिया और उसमें मीठा-मीठा शहद भी भर दिया। छत्ते में मीठा-मीठा शहद भरा हुआ देककर मधुमक्खी के आनन्द का पार न रहा। बस, वह शहद-भरा छत्ता लेकर भनभनाती हुई देवता के पास पहुंची और उन्हें शहद चढ़ाते-चढ़ाते बोली, "हे महाराज, मैंने यह शहद बड़ी मेहनत से इकट्ठा किया है। अब इसे आपको ही चढ़ाती हूं। कृपा कर मुझपर प्रसन्न हो जाइए!"

देवता ने शहद चखते-चखते कहा, "वाह-वाह! यह तो बहुत मीठा है! चखते ही मेरा चित्त प्रसन्न हो गया। बोलो,

तुम्हें क्या वरदान दूं ? जो तुम्हारा जी चाहे; मांग लो।"

मधुमक्खी भनभनाकर बोली, "महाराज, मुझे किसी चीज़ की कमी नहीं है; इसलिए ग्रापसे क्या मांगूं ! मज़े से भन-भन करती हुई फूलों पर उड़ती-फिरती हूं ग्रौर उनका मधुर-मीठा शहद पीती हूं। फिर भी मेरी यह इच्छा रहती है कि मैं जिसे ग्रपना डंक मारूं, उसे खूब दर्द पहुंचे। यदि ग्राप प्रसन्न हैं, तो मुझे यही वरदान दीजिए। बस, मेरी इतनी ही प्रार्थना है।"

मधुमक्खी की यह प्रार्थना सुनकर देवता बहुत चकराए। फिर उसे घूरते-घूरते कहने लगे, "यह कैसा वरदान मांगती हो ! तुम तो बड़ी मेहनत से मीठा-मीठा शहद इकट्ठा करती हो, फिर किसीको डंक मारकर क्यों दुःख-दर्द पहुंचाना चाहती हो ? भला इससे तुम्हें क्या ग्रानन्द मिलेगा ?"

मधुमक्खी ज़रा भनभनाई ग्रौर बोली, "ग्रानन्द ? बड़ा ग्रानन्द मिलेगा महाराज ! जो मेरे डंक की चोट खाएगा, वह मारे दुःख-दर्द के खूब छटपटाएगा ! बस, मैं उसका दुःख-दर्द देख-देखकर ग्रानन्द से भनभनाती फिरूंगी !"

मधुमक्खी की यह बात सुनकर देवता को क्रोध तो बहुत ग्राया; परन्तु उन्होंने उससे कहा, "मैं वचन हार चुका हूं, इस-लिए तुझे वरदान देता हूं। जा, तू जिसे ग्रपना डंक मारेगी, वह खूब छटपटाएगा—खूब दुःख-दर्द उठाएगा ! परन्तु यह याद रखना कि छटपटाने वाले की, दुःख-दर्द उठानेवाले की देह में तेरा डंक टूटकर रह जाएगा ग्रौर ग्रन्त में तू भी दुःख-दर्द उठाते-उठाते टांगें पसारे रह जाएगी !"

मधुमक्खी क्रोध में ग्राकर डंक ज़रूर मारती है; परन्तु, डंक

पीड़ित प्राणी की देह में ही रह जाता है। फल यह होता है कि मधुमक्खी स्वयं बहुत कष्ट पाती है और इसी कष्ट में प्राण छोड़ देती है। ठीक तो है, किसीको दुःख पहुंचाकर कभी सुख नहीं मिल सकता।

२४. कपटी का अन्त बुरा होता है

सेठ बीमार पड़ा और अच्छे-अच्छे हकीम तथा वैद्य उसकी दवा-दारू करने लगे। परन्तु सेठ को आराम मिलना तो दूर रहा उसकी बीमारी दिनों-दिन बढ़ती गई। जब हकीम और वैद्य दवा-दारू करते-करते थक गए, तो उन्होंने एक दिन सेठ को साफ-साफ जवाब दे दिया, "बीमारी बुरी है। आप बचेंगे नहीं। दवा-दारू करना बेकार है।"

हकीमों और वैद्यों का यह जवाब सुना, तो सेठ बहुत घबराया और लगा गिड़गिड़ाकर देवता को पुकारने, "हे महाराज, यदि आपकी दया से मैं अच्छा हो जाऊं और चलने-फिरने लगूं, तो आपको एक हज़ार मोहरें चढ़ाऊं!"

सेठ की इस पुकार पर सेठानी बहुत घबराई और बोली, "देखिए, आप अच्छे हो जाएं, तो देवता को एक हज़ार मोहरें चढ़ाने का ध्यान अवश्य रखिए।"

सेठ ने बिगड़कर कहा, "बेकार घबराती हो! देवता को मोहरें चढ़ाने का ध्यान क्यों न रखूंगा! अच्छा हो जाऊं, तो एक हज़ार क्या, दो हज़ार मोहरें चढ़ा दूंगा। भला प्राणों के सामने

मोहरों की कीमत ही क्या है ! समझीं ?"

कुछ दिन बाद सेठ सचमुच बिना दवा-दारू के ही अच्छा हो गया और चलने-फिरने लगा। परन्तु उसे मानो देवता को मोहरें चढ़ाने का स्मरण ही न रहा। यह देखकर सेठानी ने उससे कहा, "अब चढ़ा दीजिए न देवता को एक हज़ार मोहरें।"

सेठ ने उत्तर दिया, "ओहो ! मुझे तो सुधि ही न रही थी। तुमने अच्छी याद दिलाई। बस, कल ही लो; देवता को आटे की एक हज़ार गोलियां चढ़ा दूंगा—पूरी एक हज़ार !"

सेठानी घबराकर बोली, "कहते क्या हो ! देवता को आटे की गोलियां ! सोने की मोहरों के बदले आटे की गोलियां !"

सेठ ने हंसकर कहा, "जानतीं-समझतीं तो कुछ हो नहीं; बस, बेकार घबराने लगती हो ! देवता के लिए जैसी सोने की मोहरें, वैसी आटे की गोलियां। वे तो केवल पूजा चाहते हैं और पूजा पाते ही प्रसन्न हो जाते हैं !"

सेठानी गिड़गिड़ाकर बोली, "ऐसा न करो ! जो कह चुके हो, वही करो। घर में भगवान का दिया हुआ सब कुछ तो है। फिर देवता को अप्रसन्न करने की क्या आवश्यकता ?"

सेठ झुंझलाकर बोला, "क्यों बेकार बकबक करती हो ! मैंने अच्छे-अच्छे लोगों को बुद्धू बनाया है; ये बेचारे देवता किस गिनती में हैं ! अप्रसन्न भी हो जाएंगे, तो मेरा क्या बिगाड़ लेंगे !"

सेठ ने सचमुच दूसरे दिन देवता को आटे की एक हज़ार गोलियां चढ़ा दीं। रात को सपने में उसे एक भूत ने दर्शन दिए और उससे कहा, "आज तूने देवता की जो पूजा की है, वह उनको बहुत पसन्द आई है और वे तुझपर बहुत प्रसन्न हैं। बस, तू

सवेरा होते ही अमुक जंगल में जा; वहां धरती खोदने पर तुझे हज़ारों क्या लाखों मोहरें मिलेंगी।"

अब सेठ की खुशी का क्या कहना था ! वह सवेरा होते ही उस जंगल में जा पहुंचा। वहां चोरों का राज्य था। चोरों ने उसे देखते ही पकड़ लिया। चोरों के हाथों में पड़कर वह बहुत रोया-गिड़गिड़ाया और बोला, "भाइयो, कृपाकर मुझे छोड़ दो। चाहो, तो मुझसे हज़ार, दो हज़ार मोहरें भले ही ले लो !"



परन्तु चोरों ने उसके रोने-गिड़गिड़ाने पर ज़रा भी ध्यान नहीं दिया और व्यंग्यपूर्वक उसे डांट दिलाई, "रहने भी दे, छली-कपटी कहीं का ! जब तू देवता के साथ छल-कपट करने से नहीं चूका, तो हम लोगों के साथ छल-कपट करने से कब चूकेगा ! अब तो बस,

हम लोग तुझे दूर देश ले जाएंगे और चोरों के हाथ बेचकर टके बनाएंगे !"

२५. लोभी को लोभ ले डूबता है

शाम होते-होते खूब आंधी आई और खूब पानी बरसा। अब तो चरवाहा बहुत घबराया। उसने अपनी बकरियों और बच्चों के साथ एक गुफा में आश्रय लेना चाहा। परन्तु गुफा के पास पहुंचने पर क्या देखा कि उसमें पहले से ही कुछ जंगली भेड़ें अपने बच्चों को साथ लिए अड्डा जमाए बैठी हैं।

यह देखकर चरवाहा बहुत प्रसन्न हुआ। उसने मन में सोचा, 'बहुत अच्छा रहा। अब इन भेड़ों और बच्चों को फुसलाऊं, इनपर अपना अधिकार जमाऊं तथा गांव में मैं ही मैं दिखूं!'

बस, इस आशा में चरवाहा अंधा हो गया। उसने अपनी बकरियों तथा उनके बच्चों को खिलाने के लिए दिन-भर में जितना घास-फूस इकट्ठा किया था, वह सबका सब जंगली भेड़ों और उनके बच्चों को खिला दिया। इस नये लोभ के सामने उसे अपनी पालतू बकरियों और उनके बच्चों का ख्याल भी न आया। उनको रात-भर गुफा के बाहर रहना पड़ा और आंधी, पानी तथा सर्दी का मुकाबिला करना पड़ा।

चरवाहा सवेरा होते ही गुफा से बाहर निकला तो देखता क्या है कि उसकी पालतू बकरियों में से कितनी ही अपने नन्हे-

नन्हे बच्चों के साथ मरी पड़ी हैं। इतने में जंगली भेड़ें अपने-अपने मेमनों के साथ गुफा से बाहर आईं और इधर-उधर चलती हुईं। चरवाहा पुकार-पुकारकर उनसे कहने लगा, "कितने बेईमान और कृतघ्न हो तुम लोग। मैंने अपनी बकरियों और उनके बच्चों का सारा भोजन तुम्हें रात-भर में खिला दिया और तुम्हारी रखवाली का पूरा-पूरा प्रयत्न किया। फिर भी तुमने मुझे इतनी जल्दी छोड़कर अपना-अपना रास्ता नापा। वाह, यह कैसी भलमनसाहत है तुम लोगों की।"

चलते-चलते एक बूढ़ी भेड़ ने उसे उत्तर दिया, "बेईमान और कृतघ्न हम लोग नहीं, तुम हो। जो आज हम लोगों को देखते ही अपनी पुरानी बकरियों और उनके बच्चों का खयाल भूल गए। इसका मतलब बिलकुल साफ है—कल तुम और लोगों को देखते ही हम लोगों का खयाल भुला बैठोगे। फिर हम लोग किस भरोसे पर तुम्हारा साथ दें।"

इस प्रकार वह मूर्ख चरवाहा अपनी सारी जमा-पूंजी खोकर हाथ मलते-मलते गांव में लौट आया। गांववालों ने भी उसका हाल सुनकर उसकी खूब हंसी उड़ाई और उसे यह बात बताई कि लोभ के लिए पुराने सम्बन्धों और पुरानी संपत्ति को भुला नहीं देना चाहिए। तुमने लोभ किया और तुम्हारा लोभ ही तुम्हें ले डूबा।"

२६. प्रशंसा का भूखा ठगा जाता है

एक कौआ कहीं से एक मांस का टुकड़ा उठा लाया और किसी वृक्ष की डाल पर जा बैठा। अचानक वृक्ष के नीचे एक सियार आ पहुंचा। कौए की चोंच में मांस का टुकड़ा देखते ही सियार के मुंह में पानी भर आया। वह सोचने लगा कि किस तरह कौए की चोंच से मांस का यह टुकड़ा हथियाऊं और खा जाऊं।



सोचते-सोचते सियार की समझ में एक उपाय आया। उसने कौए से कहा, "वाह-वाह, कितने सुन्दर हो तुम। कितना प्यारा मालूम होता है तुम्हारा यह काला चमकीला रंग। जो देखे बस

देखता ही रह जाए। भाई, तुम्हारी चोंच की मैं क्या बड़ाई करूं, वह जैसी लम्बी है वैसी ही नुकीली है। ग्रांखें भी कैसी बड़ी-बड़ी ग्रौर गोल-गोल हैं। पंख तो तुम्हारे ऐसे चिकने हैं कि मखमल को भी मात करते हैं। परन्तु दुख की बात यही है कि तुम गूंगे हो। यदि गूंगे न होते तो पक्षियों के राजा तुम्हीं समझे जाते। क्या कहूं, भगवान की लीला बड़ी ग्रनोखी है। उसने तुम्हें जहां इतना मनोहर रूप दिया, वहां दूसरी ग्रोर तुम्हें बिलकुल गूंगा बना छोड़ा है। बताग्रो, तुम्हारी भलाई के लिए मैं क्या करूं?"

सियार के मुंह से ग्रपनी प्रशंसा सुनी, तो कौग्रा फूलकर कुप्पा हो उठा। परन्तु उसने सोचा, 'यह सियार भी कितना बेवकूफ है—मुझे गूंगा समझता है। यदि इसे ग्रपनी मनोहर बोली सुना दूं; तो क्या हानि है? यह भी क्या कहेगा कि मैंने कौए की कैसी प्यारी बोली सुनी थी।'

यह सोचते ही कौए ने चोंच खोलकर कांव-कांव की ग्रावाज़ लगाई। बस, मांस का टुकड़ा उसकी चोंच से छूटकर धरती पर जा गिरा। सियार उसे लप से खा गया ग्रौर हंसते-हंसते बोला, "समझ गया! समझ गया! कौए भाई, तुम गूंगे नहीं हो। ग्रच्छी तरह बोलना जानते हो! परन्तु थोड़ी-बहुत बुद्धि भी रखते हो, या नहीं?"

कौए की ग्रांखें खुल गईं। उसने दुखी होकर कहा, "सच है, यदि मुझमें तनिक भी बुद्धि होती, तो तुम मेरे मुंह का कौर कैसे छीन लेते? जो प्राणी प्रशंसा का भूखा रहता है, वह बहुधा इसी तरह ठगा जाता है।"

२७. बिना विचारे जो करे सो पाछे पछिताय

एक गीदड़ जंगल में इधर-उधर चक्कर काट रहा था कि अचानक कुएं में जा गिरा। वह हाथ-पैर तो बहुत-कुछ मारता रहा; परन्तु कुएं से बाहर न निकल सका! अन्त में थककर सोचने लगा, 'अब कुएं से बाहर कैसे निकला जाए ?'

कुछ समय बाद वहां एक बकरा आ निकला। वह अपनी प्यास बुझाने के लिए कुएं के पाट पर पहुंचा और कुएं में झांकते-झांकते बोला, "कौन ? गीदड़ भैया ! कुएं में क्या कर रहे हो—पानी पी रहे हो ? कुएं में पानी तो बहुत है न। खूब ठंडा और मीठा तो है न ?"

गीदड़ ने हंसते-हंसते कहा, "अच्छा, बक्कर भैया हो ! बहुत प्यासे जान पड़ते हो। फिर आ जाओ और डटकर अपनी प्यास बुझाओ। पानी की क्या पूछते हो ! मीठा इतना है, जैसे शरबत हो और ठंडा इतना है, जैसे बर्फ हो। बस, पीते जाओ, पीते जाओ और अघाने का नाम भी न लो। और पानी यहां इतना ज़्यादा है कि तुम जैसे हज़ार-हज़ार बकरे पीते रहें, फिर भी चुकने पर न आए ! अब सोच-विचार में क्या डूबे हो ! आओ, आओ, झटपट छलांग लगाओ और आनन्द लूटो। अपना तो जी ही नहीं चाहता यहां से निकलने को !"

बकरा मारे खुशी के अपना आपा भूल गया। उसने ठंडा और मीठा पानी पीने के लोभ में ज़रा भी आगा-पीछा न सोचा और धम से कुएं में कूद पड़ा। गीदड़ यही तो चाहता था। फौरन पहली ही उछाल में बकरे के सर पर जा पहुंचा और दूसरी

उछाल में कुएं से बाहर जा रहा। बकरे ने घबराकर कहा, "यह क्या गीदड़ भैया? तुम तो कुएं से बाहर खुली हवा में पहुंच गए। अब क्या हम अकेले ही यहां रहें?"

गीदड़ ने हंसते-हंसते उत्तर दिया, "हां, बक्कर भैया! अब तुम यहीं रहो और अपनी मूर्खता पर आंसू बहाओ। मेरी मीठी-मीठी बातों में आ गए और कुएं में कूद पड़े। यदि थोड़ी भी बुद्धि रखते, ज़रा भी समझ-बूझ से काम करते, तो भला इस विपत्ति में क्यों फंसते? अब तुमसे क्या कहें, तुम इतना भी तो नहीं जानते कि बिना विचारे जो करे सो पाछे पछिताय!"

२८. जैसे को तैसा

गीदड़ और सारस में बड़ी मित्रता थी। एक दिन गीदड़ के यहां कोई जलसा हुआ। उसने सारस को भी जलसे में शामिल होने और भोजन करने का निमन्त्रण दिया। सारस बड़ी खुशी से जलसे में शामिल होने और भोजन करने के लिए गीदड़ के घर पहुंचा। जब जलसा हो चुका तो गीदड़ एक चौड़ी तथा छिछली थाली में पतलो-पतली खीर ले आया और सारस से बोला, "आओ भाई, हम-तुम दोनों एकसाथ खाएं।"

थाली चौड़ी तथा छिछली थी और खीर पतली-पतली। परन्तु सारस की चोंच लम्बी और नुकीली थी। इसलिए वह दो-चार कौर भी अच्छी तरह न खा सका। उधर गीदड़ जल्दी-जल्दी चप-चपकर सारी खीर चाट गया। गीदड़ की चालाकी सारस की

समझ में आ गई। परन्तु वह बोला कुछ नहीं, बस, टुकुर-टुकुर गीदड़ का मुंह ताकता रहा। इतने पर भी गीदड़ उसकी हंसी उड़ाते हुए बोला, "अरे भाई, खाते क्यों नहीं ? खीर तो बहुत अच्छी बनी है; क्या तुम्हें पसन्द नहीं आई ?"



सारस बेचारा भूखा-प्यासा जलसे में शामिल होने और भोजन करने आया था। उसने सोचा भी न था कि गीदड़ मेरे साथ ऐसी चालाकी करेगा और इस तरह मेरी हंसी उड़ाएगा। परन्तु वह करता क्या, बस, चुपचाप घर लौट आया।

कुछ दिन बाद सारस ने भी जलसा किया और उसमें शामिल होने तथा भोजन करने के लिए गीदड़ को निमन्त्रण दिया। यह निमन्त्रण पाकर गीदड़ खुशी से झूमता-झामता सारस के घर पहुंचा। बड़ी देर तक गाना-बजाना होता रहा।

जब तमाशा देखने वाले धीरे-धीरे खिसक गए, तो सारस एक लंबे तथा संकरे मुंहवाले बर्तन में ग्राम का रस भर लाया ग्रौर उसे गीदड़ के सामने रखते हुए बोला, "गीदड़ भाई, इस लम्बे ग्रौर संकरे मुंह वाले बर्तन में ग्राम का मीठा-मीठा रस भरा हुग्रा है। ग्राग्रो, तुम ग्रौर हम दोनों एकसाथ इसे पीएं ग्रौर ग्रपनी भूख बुझाएं।"

बर्तन लम्बा तथा संकरे मुंहवाला था। उसमें गीदड़ का चौड़ा-सा मुंह जाता, तो कैसे जाता ? इसलिए वह रस की एक बूंद भी न पी सका। इधर सारस ग्रपनी लम्बी तथा नुकीली चोंच बर्तन में डाल-डालकर गटागट रस उड़ाने लगा। गीदड़ सारस की चालाकी समझ गया। परन्तु वह कहता क्या, ग्रौर करता क्या; बस, चुपचाप सारस की लंबी-नुकीली चोंच से धरती पर गिरने-वाले रस की बूंदें चाटने लगा।

यह देखकर सारस हंसा ग्रौर बोला, "धरती क्यों चाटते हो भाई! बर्तन में मुंह डालो ग्रौर पियो। यह ग्राम का मीठा-मीठा रस है। ग्रहा, इसमें कितना स्वाद है—कितनी सुगन्ध है! क्या यह तुम्हें पसन्द नहीं ग्राया ?"

गीदड़ मारे शर्म के गड़कर रह गया। थोड़ी देर बाद उसने कहा, "मानता हूं भाई; मैं ही चालाक नहीं हूं, तुम भी चालाक हो ग्रौर चालाकी का बदला भी चुकाना जानते हो! खैर कोई बात नहीं; मैंने जैसा किया, वैसा भर पाया।"

२९. छली प्रायः स्वयं छला जाता है

कुत्ते और मुर्ग में बड़ी दोस्ती थी। एक दिन दोनों घूमते-फिरते जंगल में जा पहुंचे और घंटों गप्पें लड़ाते रहे। धीरे-धीरे शाम हो गई तथा रात सर पर आ पहुंची। मुर्ग ने घबराकर कहा, "अब क्या किया जाए ? बातों ही बातों में सूरज डूब गया और यह चांद दिखने लगा। अब रात में घर पहुंचना तो मुश्किल है।"

कुत्ता लापरवाही से बोला, "घबराने की क्या ज़रूरत है ! फुर्र से इस डाल पर जा बैठो और मज़े से रात बिताओ। मैं भी इसी पेड़ के नीचे डेरा डालकर खर्राटे भरता हूं। जब सवेरा होगा तब घूमते-फिरते घर पहुंच जाऊंगा।"

बस, मुर्ग फुर्र से पेड़ की डाल पर जा बैठा और कुत्ता पेड़ के तने से टिककर धरती पर लेट रहा। सवेरा होते-होते मुर्ग जागा और अपनी आदत के अनुसार लगा ज़ोर-ज़ोर से बोलने, "कुकड़ूं-कूं, कुकड़ूं-कूं !"

मुर्ग की यह कुकड़ूं-कूं सारे जंगल में गूंज उठी और एक सियार लपझप करता हुआ उस पेड़ के पास आ पहुंचा। मुर्ग को देखते ही वह बहुत प्रसन्न हुआ और मन में सोचने लगा, 'कितना अच्छा सवेरा है आज का। ज़रा-सी हिकमत लड़ाई नहीं कि मुर्ग कलेवा बनकर मेरे मुंह में आया नहीं।' मन में यह विचार आते ही सियार ने मुसकराकर मुर्ग से कहा, "अहा मुर्ग भाई, कितना मीठा है तुम्हारा गाना। मुझे भी गाने का कुछ-कुछ शौक है। बस, नीचे उतर आओ थोड़ी देर के लिए और मेरे साथ गाओ ! क्या तुम मेरी यह छोटी-सी इच्छा पूरी नहीं कर सकते ?"

मुर्ग भी बुद्धू नहीं था। वह सियार के मन की बात ताड़ गया। फिर भी मुसकराकर बोला, "तुम्हारी बात मुझे बहुत पसंद आई, सियार भाई! मैं अभी नीचे आता हूं। और तुम्हारे सुर में सुर मिलाकर गाता हूं। मेरा एक मित्र उस तरफ पेड़ के तने से सटकर सो रहा है। उसे भी जगा लो न! वह बाजा बजाएगा और हम दोनों मिलकर गाएंगे। सच कहता हूं मज़ा आ जाएगा।"

यह सुनते ही सियार मारे खुशी के नाच उठा। वह लपककर पेड़ की उस ओर जा पहुंचा, जिस ओर कुत्ता सो रहा था। कुत्ते



पर नज़र पड़ते ही उसके प्राण सूख गए। वह तेज़ी से भागने लगा। मुर्ग की बातें सुनकर कुत्ता सावधान हो ही चुका था; भला

वह सियार को कब छोड़नेवाला था। उसने एक सपाटे में उसका गला धर दबाया। यह देखकर मुर्ग हंसा और बोला, "मूर्ख कहीं का! आया था मेरी घात में। इतना भी नहीं जानता कि जो दूसरों को छलता है, वह स्वयं छला जाता है।"

३०. पड़ोसी पर अत्याचार करना घातक है

लकड़हारा अपनी कुल्हाड़ी लेकर जंगल में पहुंचा और लगा वृक्षों के सामने रोने-गिड़गिड़ाने, "भाइयो, मुझपर दया करो! बस, मुझे एक छोटी-सी लकड़ी दे दो। उसे छील-छालकर मैं अपनी कुल्हाड़ी में डाल लूंगा और भूखों मरने से बच जाऊंगा। इसी कुल्हाड़ी से मैं अपना पेट पालता हूं; परन्तु इसमें बेंट नहीं है, जिससे यह बेकार हो रही है।"

साल, पीपल आदि बड़े-बड़े वृक्षों ने सोचा कि लकड़हारे पर दया करनी चाहिए। बस, उन्होंने अपने गरीब पड़ोसी नीम की एक बड़ी-सी डाल तोड़कर लकड़हारे को देने की ठानी। नीम गिड़गिड़ाया, "यह क्या करते हो भाइयो! मैं गरीब हूं, तुम्हारा पड़ोसी हूं। मुझपर यह अत्याचार न करो, मेरी डाल न तोड़ो।"

परन्तु वृक्षों ने उसके रोने-गिड़गिड़ाने पर ज़रा भी ध्यान न दिया और उसकी डाल तोड़कर लकड़हारे को दे दी।

लकड़हारे ने नीम की वह डाल छील-छालकर बेंट बनाया और कुल्हाड़ी में डाला। इसके बाद आम, इमली, पीपल आदि जो वृक्ष सामने आया, उसीको कुल्हाड़ी से काट-काटकर धरती

पर गिराना शुरू किया। यह देखकर साल रोते-रोते बोला, "हाय, यह क्या हुआ ! हमने न नीम की डाल तोड़ी होती; न हमारे सर पर यह मुसीबत आती ! अब यह कुल्हाड़ी का बेंट जो न कर डाले, वही थोड़ा है।"



उत्तर में शीशम ने आंसू बहाते-बहाते कहा, "अब पछताने से क्या होता है। अब तो हमारा भी नम्बर आ रहा है। भाई, बात यह है कि बलवान अपने निर्बल पड़ोसी पर अत्याचार क्या करता है, अत्याचारी को अपने ही ऊपर अत्याचार करने के लिए न्योता देता है। पड़ोसी पर अत्याचार करना घातक होता है। काश, हमने यह बात पहले ही समझ ली होती।"

३१. बुद्धिमान खतरा भांप जाता है

बुढ़ापे में ग्राकर एक सिंह थक गया। वह यहां-वहां घूमने-फिरने ग्रौर शिकार करने में ग्रसमर्थ हो गया तथा भूखों मरने लगा। ग्रब वह क्या करता—कैसे ग्रपना पेट भरता। ग्राखिर उसने सोचा, 'बिना खाए-पिए कितने दिन जीवित रहूंगा। यदि ग्रब चालाकी से ग्रपना काम निकालूं, तो···।'

इसके बाद सिंह ग्रपनी गुफा में पड़ा रहा। उसने बाहर निकलना बन्द कर दिया ग्रौर सभी वनपशुग्रों के पास यह समाचार भिजवा दिया, "सिंह बुढ़ापे के ज़ोर से रोगी ग्रौर दुःखी हो उठा है। ग्रब चलने-फिरने योग्य भी नहीं रहा है। इसलिए वनपशुग्रों को चाहिए कि वे गुफा में सिंह का समाचार लेने ग्राया करें।"

भला वनपशु ग्रपने राजा की ग्राज्ञा कैसे टालते! वे एक-एक कर सिंह का कुशल-समाचार पूछने के लिए उसकी गुफा में पहुंचने लगे। ग्रौर सिंह बड़ी सरलता से उनको वहां मार डालता ग्रौर डकार जाता। जब सिंह को इस प्रकार बिना हाथ-पैर चलाए ही भोजन मिलने लगा, तब वह कुछ दिन में ही मोटा-तगड़ा ग्रौर बलवान हो उठा।

इसपर एक गीदड़ सन्देह में पड़ गया। वह सोचने लगा, 'मालूम होता है कि सिंह किसी चालाकी से काम लेता है। वह तो ग्रपनी गुफा में पड़ा ही रहता है, ग्रौर उसके पास जो पशु पहुंचता है, वह भी फिर कभी ग्रांखों दिखाई नहीं देता। यदि सिंह की इस चालाकी का भेद लिया जाए, तो कैसा रहे।'

यह सोच गीदड़ सिंह की गुफा के सामने पहुंचा ग्रौर बोला,

"महाराज, कई दिन से आपको नहीं देखा। अब कैसी तबीयत है आपकी ?"

उत्तर में सिंह ने कूल्हते-कांखते हुए कहा, "कौन, गीदड़ भाई ! बहुत दिन बाद खबर लेने आए। वहां बाहर क्यों खड़े हो ? भीतर आ जाओ, और थोड़ी देर मेरे पास बैठो। तुम लोगों को देख लेता हूं, तो मेरी तबीअत प्रसन्न हो उठती है। अब तो मेरी हालत बहुत बुरी हो गई है। बस, यों समझ लो कि आज मरे, कल दूसरा दिन।"

पर अब तक सारी बात बुद्धिमान गीदड़ की समझ में आ गई थी। उसने खतरा भांप लिया था। वह मुसकराकर बोला, "महाराज, भगवान करे, आपको आराम हो जाए। परन्तु क्षमा कीजिए; मुझे यहीं बाहर रहने दीजिए। गुफा के द्वार पर बने हुए वनपशुओं के पद-चिह्न साफ-साफ बताते हैं कि जो पशु गुफा के भीतर गए हैं, वे लौटकर गुफा के बाहर नहीं आए हैं। इसलिए वहां भीतर आने को मेरा जी नहीं चाहता। बस चलता हूं; मेरा प्रणाम स्वीकार कीजिए !"

३२. आप परे ही मालुम होय

एक व्यापारी के पास घोड़ा भी था, गधा भी था। वह घोड़े पर चढ़कर और गधे पर बोझ लादकर गांव-गांव माल बेचता फिरता था। घोड़े की कीमत अधिक थी, इसीलिए व्यापारी उस-पर अपना प्यार लुटाता था। बेचारे गधे की ज़रा भी चिन्ता न

करता था।

एक दिन व्यापारी घोड़े पर चढ़कर और गधे पर बोझ लादकर किसी गांव की ओर जा रहा था। गधा तो दुबला-पतला था, दूसरे उसपर बोझ बहुत लदा था, तीसरे रास्ता ऊबड़-खाबड़ था, इसलिए वह एक-एक पैर बड़ी कठिनाई से आगे बढ़ाता था। आखिर उसने घबड़ाकर कहा, "भाई, इस बोझ ने तो मुझे मार डाला। दया कर मेरे प्राण बचा लो। बस, थोड़ा-सा बोझ अपने ऊपर लाद लो। बच रहा, तो जीवन-भर तुम्हारा उपकार मानूंगा और तुम्हारी सेवा करूंगा।"

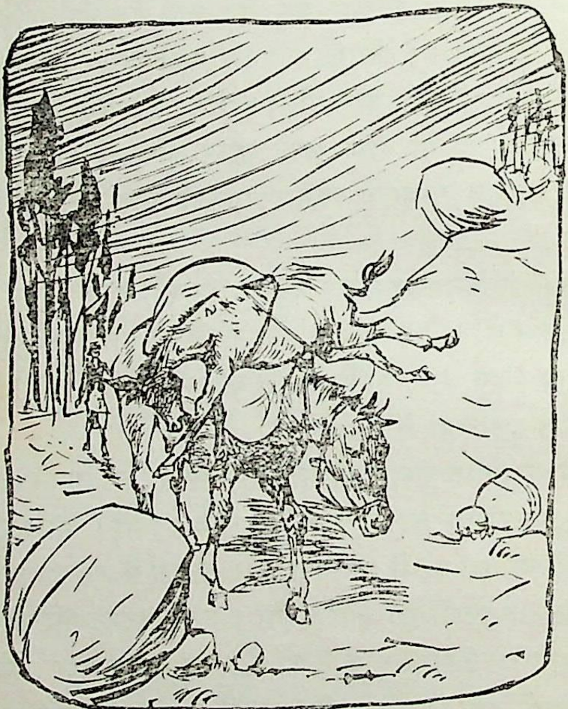
घोड़े ने बिगड़कर उत्तर दिया, "यह क्या बकता है, गधे के बच्चे! हम और भी कभी बोझ ढोते रहे हैं जो आज तेरे कहने से ढोने लगे! खबरदार, जो फिर ऐसी बात मुंह से निकाली! देखी है हमारी दुलत्तियां?"

बेचारा गधा कुछ न बोला, रोते-कलपते पैर उठाने लगा। परन्तु अब रास्ता चलना उसके बूते से बाहर था। आखिर वह बेदम होकर एक गढ़े में जा गिरा और चटाक् से उसका एक पैर टूट गया। व्यापारी अब क्या करता। उसने चटपट गधे की पीठ से सारा बोझ उतारकर घोड़े की पीठ पर लादा और ऊपर से गधे को भी चढ़ा दिया। इसके बाद कोड़ा फटकारते हुए आवाज़ लगाई, "टिक्-टिक्!"

यह मुसीबत सर पर आई, तो घोड़े का सारा अभिमान हवा हो गया। वह अछताते-पछताते हुए सोचने लगा, 'हाय-हाय, यह तो बहुत बुरा हुआ! मैं इतना भारी बोझ कैसे ढो सकूंगा।

बेचारे गधे ने कहा था—बस, थोड़ा-सा बोझ ले चलो। यदि मैंने तभी इसकी बात मान ली होती, तो न इसका पैर टूटता और न मुझे यह पहाड़ अपनी पीठ पर लादना पड़ता।

'परन्तु अब पछताने से क्या लाभ? मैंने जो किया, उसका



फल हाथों-हाथ पा लिया। मुझे यह सोचना चाहिए था कि यदि मैं गधे की थोड़ी-सी सहायता कर दूंगा, तो दुबला नहीं हो जाऊंगा। मेरा कर्तव्य था कि अपने से दुर्बल के दुःख-भार में उसका हाथ बंटाता, उसकी सहायता करता।'

३३. बुरा व्यक्ति भलाई का बदला बुराई में देता है

मांस चबाते-चबाते एक भेड़िये के गले में हड्डी ग्रटक गई। वह इस मुसीबत में फंसकर इधर-इधर चक्कर काटने लगा ग्रौर जो पशु या पक्षी सामने ग्राता, उसीसे गिड़गिड़ाकर कहता, "ऐ प्यारे भाई, मुझपर दया करो, मुझे मरने से बचा लो ! मेरे गले में ग्रटकी हुई हड्डी निकाल दो। मैं बच जाऊंगा, तो तुम्हें मुंह-मांगा इनाम दूंगा ग्रौर जीवन-भर तुम्हारा उपकार भी मानूंगा।"

सभी पशुग्रों ग्रौर पक्षियों ने भेड़िये का यह रोना-धोना सुना ग्रनसुना कर दिया। ग्रन्त में एक सारस उसका कष्ट देखकर पसीज़ उठा ग्रौर उसके गले में ग्रटकी हुई हड्डी निकालने के लिए तैयार हो गया। बस, भेड़िये ने ग्रपना मुंह खोल दिया ग्रौर सारस ने उसमें ग्रपनी लम्बी चोंच डालकर हड्डी बाहर निकाल ली तथा एक ग्रोर धरती पर फेंक दी।

गले से हड्डी निकलते ही भेड़िये ने सुख की सांस ली, गुर्राकर लाल-लाल ग्रांखें सारस पर जमाईं ग्रौर उससे पूछा, "जब हड्डी निकल चुकी है, तब तू हमारे सामने क्यों खड़ा है ?"

सारस ने उत्तर दिया, "इनाम पाने के लिए ! ग्रापने कहा था न कि यदि मैं ग्रापके गले में ग्रटकी हुई हड्डी निकाल दूंगा, तो ग्राप मुझे मुंहमांगा इनाम देंगे। ग्रब दीजिए न वह इनाम !"

भेड़िये ने गुर्राहट ज़रा तेज़कर कहा, "ग्ररे बेईमान, कृतघ्न! तू हमारे मुंह में ग्रपनी चोंच डाल रहा, फिर भी हमने तेरा गला नहीं मरोड़ा ! क्या तेरे लिए हमारी ग्रोर से यह कम इनाम

हुआ ? यदि अपना भला चाहता है, तो हट जा हमारे सामने से !"

सारस बोला, "उपकार मानने के बदले यह डांट-फटकार ! सुना था कि बुरे के साथ भलाई करने पर भी बदले में बुराई मिलती है। यह आज अपनी आंखों देख लिया।"

भेड़िये ने और भी तेज़ पड़कर कहा, "अब जाता है या हम आगे बढ़ें और मरोड़ें तेरा गला।"

यह सुनते ही बेचारा सारस चुपचाप वहां से चलता बना।

३४. मित्र वही जो विपत्ति परे को

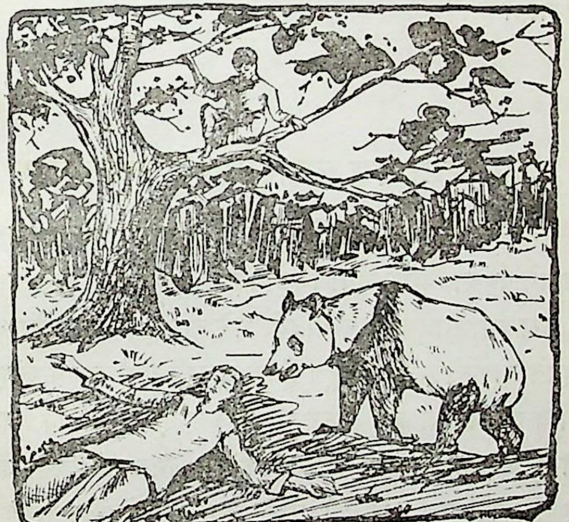
दो मित्र एक साथ जंगल की राह से कहीं जा रहे थे। अचानक उनको एक रीछ आता हुआ दिखाई दिया। अब तो वे बहुत घबराए और आपस में सलाह करने लगे, "बताओ, क्या किया जाए ? अब प्राण कैसे बचें ? रीछ अभी आएगा और हम दोनों को ज़िन्दा न छोड़ेगा !"

उनमें से एक मित्र बहुत चालाक था। वह तेज़ी से दौड़ भी सकता और पेड़ पर भी चढ़ सकता था। इसलिए वह जल्दी-जल्दी 'यह जा—वह जा' एक पेड़ पर जा चढ़ा। उसने ज़रा भी यह न सोचा कि मेरा मित्र अकेला रहेगा, तो रीछ के सामने उसकी क्या दशा होगी।

दूसरा मित्र बिलकुल सीधा-सादा था। वह न तेज़ी से दौड़ सकता था और न ही पेड़ पर चढ़ सकता था। उसने सुना था कि रीछ मरे हुए आदमी को नहीं छेड़ता, उसे देख-दाखकर चुप-

चाप चला जाता है। बस, वह सांस रोककर धरती पर लेट रहा। इस तरह, जैसे सचमुच मर गया हो।

इतने में रीछ उस सीधे-सादे मित्र के पास आ पहुंचा। वह थोड़ी देर तक उसके मुंह, नाक, कान आदि अंग सूंघता रहा। फिर उसे मरा हुआ समझकर अपनी राह चला गया।



रीछ के जाते ही वह चालाक मित्र पेड़ से उतरा, अपने सीधे-सादे मित्र के पास आया और हंसते-हंसते बोला, "यार, तुमने तो रीछ से भी मित्रता जोड़ ली। भला वह तुम्हारे कान में धीरे-धीरे क्या कह रहा था?"

सीधे-सादे मित्र ने कहा, "अब, यह न पूछो! रीछ बड़े काम की बात कह गया है—बड़े काम की बात!"

चालाक मित्र फिर बोला, "तब तो यार, मुझे भी बताओ।

देखो, मैं तुम्हारा मित्र हूं। मुझसे छिपाओ मत !"

सीधे-सादे मित्र ने उत्तर दिया, "अच्छा, तो सुनो ! रीछ मुझसे यह कह गया है कि जो मित्र अपने विपत्ति में पड़े हुए मित्र को छोड़कर चल देता है, वह मित्र नहीं है। उसपर भरोसा करना भूल है। मित्र तो वह है, जो अपने विपत्ति में पड़े हुए मित्र के काम आता है।"

३५. भला इस असन्तोष से क्या लाभ

अन्त में शेर बहुत दुःखी हो उठा। एक दिन वह ब्रह्माजी के सामने पहुंचा और लगा गिड़गिड़ाने, "भगवन्, मेरे शरीर में बल, पराक्रम, साहस और सौंदर्य भरे हुए हैं। दांत और नाखून तो इतने नोकीले और मज़बूत हैं कि उनकी बदौलत मैं जंगल का राजा बना फिरता हूं। फिर भी न-कुछ एक मुर्गे की आवाज़ सुनते ही डर जाता हूं—थर-थर कांपने लगता हूं। क्या यह मेरे लिए शर्म की बात नहीं है ? प्रभो, आपने मुझे पैदा करते समय मेरे पीछे यह कौन-सी बला लगा दी।

ब्रह्माजी ने शेर को समझाया, "बेटा, यह कौन-सा असन्तोष ले बैठे। भला इससे कौन-सा लाभ उठा लोगे। जो संसार में पैदा होता है, वह किसी न किसी बात में कम रहता है, और उससे लाभ भी उठाता है। जाओ, यह असन्तोष छोड़ो और आनन्द से अपना समय बिताओ।"

ब्रह्माजी के इस प्रकार समझाने पर भी शेर को सन्तोष नहीं

हुआ ! वह मन में जलता-भुनता और ब्रह्माजी को कोसता हुआ वन की ओर लौटा। मार्ग में क्या देखता है कि सामने से एक लम्बा-चौड़ा भारी-भरकम हाथी अपने कान बराबर हिलाता चला आ रहा है—सूप जैसे बड़े-बड़े कान।

शेर को बड़ा अचरज हुआ। उसने हाथी से पूछा, "क्यों भाई, यह अपने सूप जैसे बड़े-बड़े कान क्यों लगातार हिलाते हुए चल रहे हो ?"

हाथी ने पैर आगे बढ़ाते-बढ़ाते उत्तर दिया, "अरे, तुम इतना भी नहीं जानते ? मैं इन भन-भन करते हुए मच्छरों से बहुत डरता हूं। यदि इनमें से एक भी मच्छर मेरे कान में घुस जाए, तो मैं बेचैन हो जाऊं—तड़प-तड़पकर मर जाऊं।"

यह सुनते ही शेर को सन्तोष हो गया। उसने अपने-आप से कहा, "भला, मेरे असन्तोष से क्या लाभ होने वाला है। ब्रह्माजी का कहना बिलकुल सच है और मेरे दुखी होने का कोई कारण नहीं है। जब इतना बड़ा हाथी इतने छोटे मच्छर से दिन-रात डरता है, तब मैं मच्छर की अपेक्षा बहुत बड़े मुर्ग की आवाज़ से कांप उठता हूं, तो यह कौन-से अचरज की बात है।"

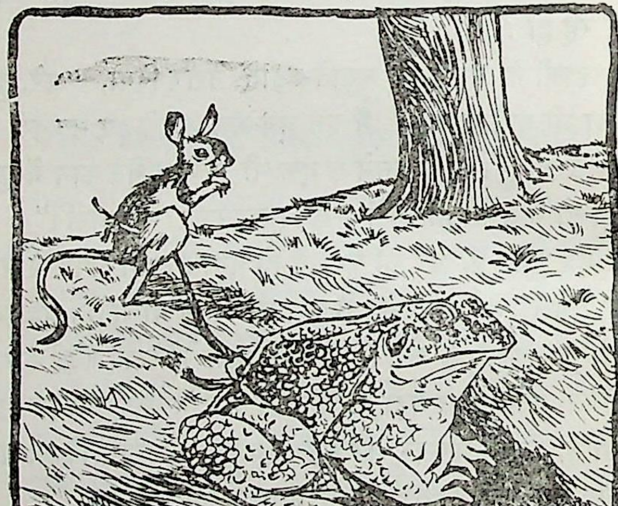
३६. समान स्वभाववाले से मित्रता करो

चूहे और मेढक की भेंट हुई और वह देखते-देखते बड़ी गहरी मित्रता में बदल गई।

चूहे ने कहा, "चलो भाई, विदेश चलें; सुख से कमाएं-

खाएं। यहां तो पेट-भर भोजन के लाले पड़े रहते हैं।"

मेढक ने जवाब दिया, "बात तो बड़े पते की कहते हो! बस, चलो। अभी चलें। परन्तु चलने से पहले एक काम करें—हम दोनों एक मज़बूत और मोटे धागे से अपनी-अपनी कमर बांध लें। ऐसा होने से हम दोनों सदा एकसाथ रहेंगे, कभी आपस में न बिछुड़ेंगे और सुख-दुःख में एक-दूसरे के काम आ सकेंगे।"



चूहे को यह सलाह इतनी पसन्द आई कि वह फौरन कहीं से एक मोटा और मज़बूत धागा ढूंढ़ लाया। फिर उसके पहले छोर से अपनी और दूसरे छोर से मेढक की कमर बांधने के बाद बोला, "लो, झटपट चलो, अब ज़रा भी देर न करो।"

मेढक ने फुदकते हुए कहा, "हम आगे बढ़ते हैं। तुम हमारे पीछे-पीछे दौड़ लगाते चले आओ।"

इस प्रकार दोनों दोस्त एक-दूसरे से बंधकर विदेश की ग्रोर चल पड़े। रास्ते में एक नाला मिला। उसका गहरा नीला पानी देखते ही चूहा घबराकर बोला, "ग्र-र-र! यह नाला बीच में कहां ग्रा मरा। भैया मेढक, हम तो इसे पार न कर सकेंगे।"

मेढक एक छलांग मारकर पानी में जा रहा। उसके साथ चूहा भी खिचकर पानी में जा पहुंचा। मेढक ज़रा बिगड़कर बोला, "मरे क्यों जाते हो। तैरते-तैरते चले ग्राग्रो न। तैरना न जानते हो, तो वैसा कहो। हमारी पीठ पर ग्रा बैठो। हम तुम्हें बड़ी सरलता से उस पार पहुंचा देंगे।"

बीच धार में जो शैतानी सूझी, तो मेढक गड़ाप से पानी के भीतर जा रहा ग्रौर चूहे को भी पानी के भीतर खींचने लगा। बेचारा चूहा लगा ग्रपने बचाव की कोशिश करने ग्रौर गिड़गिड़ाने, "ग्ररे मेढक भैया, दया करो; पानी के ऊपर ग्रा जाग्रो। नहीं तो हम डूबे ग्रौर मरे।"

परन्तु मेढक को तो मज़ा ग्रा रहा था। भला वह चूहे की चीख-पुकार कब सुनने वाला था। चूहा बेचारा उसी तरह रो-रोकर कहता था, "मान जाग्रो! ऐ मेढक भैया, मान जाग्रो। तनिक तो मित्रता निबाहो। यों हमारे प्राणों के ग्राहक न बनो। बूढ़े-पुराने लोग ठीक ही कह गए हैं—समान स्वभाव वाले से ही मित्रता करो, नहीं तो बाद में पछताना पड़ता है।"

मेढक ग्रौर चूहे की इस खींचा-तानी से पानी में बड़ी हल-चल मची हुई थी। उसी समय ग्राकाश में एक चील उड़ी जा रही थी। वह चूहे को देखकर फौरन उसपर टूट पड़ी ग्रौर उसे ग्रपने पंजों में दबाकर ले उड़ी। मेढक चूहे की कमर से तो बंधा

ही था, वह भी उसके साथ-साथ चील का शिकार हो गया।

३७. सचाई की परख काम से होती है

हलवाई अपनी दूकान पर बैठा-बैठा मिठाई बेच रहा था। अचानक दो लड़के मिठाई खरीदने के बहाने उसके पास पहुंचे। उनमें से एक ने हलवाई की नज़र बचाकर कुछ पेड़े उठाए और चुपचाप अपने साथी के हवाले कर दिए। साथी ने वे पेड़े धीरे से अपनी जेब में रख लिए।

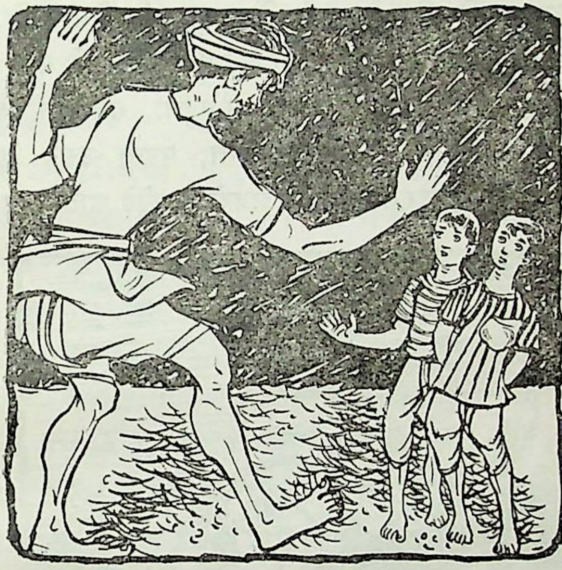
इतने में हलवाई की नज़र पेडों के थाल पर पड़ी। उसमें कुछ पेड़े कम दिखाई दिए। हलवाई ने इधर-उधर देखा, किन्तु पेड़े कहीं होते, तब तो उसे दिखते। हलवाई सोचने लगा, 'ताज्जुब की बात है। मैंने कहीं उठाकर रखे नहीं, दुकान पर नये ग्राहक आए नहीं और पेड़े देखते-देखते गायब हो गए। हो न हो, यह इन्हीं लड़कों की करतूत है। देखने में ये बदमाश भी जान पड़ते हैं। अच्छा, ज़रा देखूं तो इनको।'

बस, हलवाई दुकान से नीचे कूद पड़ा। उसने कसकर दोनों लड़कों के हाथ पकड़े और डांटकर कहा, "बोलो, क्यों चुराए तुमने पेड़े?"

पहला लड़का बोला, "भगवान कसम, आपके पेड़े मेरे पास हैं ही नहीं।"

दूसरा लड़का बोला, "भगवान कसम, आपके पेड़े मैंने चुराए ही नहीं।"

हलवाई दूसरे लड़के की जेब से पेड़े निकालते-निकालते बोला, "और ये क्या हैं ? झूठ बोलते हो ! शर्म नहीं आती ?"



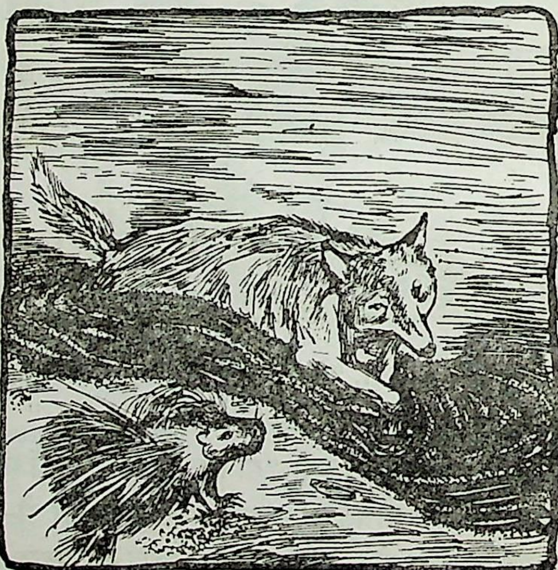
पहले लड़के ने कहा, "मेरी जेब से तो नहीं निकले !"

दूसरे लड़के ने कहा, "परन्तु मैंने तो नहीं चुराए ।"

हलवाई ने हंसते-हंसते कहा, "मानता हूं कि तुम दोनों अपनी-अपनी समझ में सच बोलते हो । परन्तु चोर तुम दोनों हो—पेड़े चुराने वाले भी तुम दोनों हो । बच्चो, सचाई की परख मुंह से नहीं होती—सचाई की परख तो काम से होती है ।"

३८. कभी-कभी रोग से दवा अधिक दुखदायी होती है

बरसात के दिन थे। नदी में बाढ़ आई हुई थी। फिर भी एक गीदड़ हिम्मत बांधकर उसमें कूद पड़ा और उसे पार करने लगा। जब तैरते-तैरते बीच धार में पहुंचा, तब पानी के तेज़ बहाव के साथ नीचे की ओर बह चला; परन्तु उसने हिम्मत नहीं हारी। लगातार तैरता रहा, लहरों के थपेड़े खाते-खाते आगे



बढ़ता रहा और अन्त में उस पार जा पहुंचा। परन्तु तभी किनारे की दलदल में ऐसा फंस गया कि बाहर न निकल सका।

गीदड़ तो इस कष्ट में फंसा ही था, अब उसे एक और कष्ट

ने आ घेरा। उसपर कितने ही मच्छर टूट पड़े और मज़े से उसकी पीठ में अपनी-अपनी सूंडें चुभाकर उसका खून पीने लगे। भला गीदड़ इस कष्ट का सामना कैसे करता। बेचारा न स्वयं भाग सकता था, न मच्छरों को भगा सकता था। बस, दलदल में फंसा रह-रहकर चीख उठता था।

इतने में एक साही वहां आ निकली। गीदड़ का यह कष्ट देखकर उसे बड़ी दया आई और वह गीदड़ से बोली, "भाई, ये मच्छर तुम्हें बड़ा कष्ट दे रहे हैं। कहो तो मैं इन्हें उड़ा दूं।"

गीदड़ चतुर था, समझदार था। उसने कुछ सोचकर कहा, "नहीं बहन, रहने दो; इन्हें उड़ाने की आवश्यकता नहीं।"

साही ने चकित होकर पूछा, "क्यों ?"

गीदड़ ने आह भरकर उत्तर दिया, "ये मच्छर बड़ी देर से मेरा खून चूस रहे हैं, इसलिए इनकी भूख बहुत कुछ बुझ चुकी है और अब ये स्वयं भागते जाते हैं। यदि तुम इन्हें भगा दोगी तो ये भूखे रह जाएंगे। इसके बाद अपने सैकड़ों-हज़ारों साथियों को लेकर आ पहुंचेंगे और मेरा सारा खून चूस डालेंगे। फिर तुम कितनी ही चेष्टा करोगी, ये भागने का नाम न लेंगे और मेरे प्राण लेकर ही शांत होंगे।

"एक बात और है। यदि तुमने इनको भगाने के लिए अपने कांटे चलाए और दो-चार कांटे मेरे शरीर में चुभ गए, तो ऐसी हालत में रोग के बदले दवा ही मुझे अधिक दुखदायी हो जाएगी। इसलिए अच्छा तो यही है कि मैं अभी थोड़ा-सा दुख और भोग लूं, फिर शायद अधिक सुख पा सकूं।"

३९. सामर्थ्य देखकर ही काम करना चाहिए

एक गिद्ध पहाड़ की चोटी पर बैठा था। वह पहाड़ के नीचे मैदान की ओर ताक रहा था जहां भेड़ों के साथ उनके नन्हे-नन्हे मेमने भी हरी-हरी दूब चर रहे थे। अचानक गिद्ध उड़ान भरकर मैदान में उतरा और एक मेमने को अपने पंजों में दबा ले गया। वह पहाड़ की उसी चोटी पर पहुंचा और अपनी नोकीली चोंच से मेमने को नोच-नोचकर, उसकी मांस-मज्जा उधेड़-उधेड़कर खाने लगा।

गिद्ध का यह काम देखकर कौआ मारे ईर्ष्या के जल उठा। वह मन में सोचने लगा, 'क्या गिद्ध ही सबल है और मैं सबल नहीं हूं ? गिद्ध भी एक पक्षी है और मैं भी एक पक्षी हूं। गिद्ध भी मांस-भक्षी है और मैं भी मांसभक्षी हूं। यदि गिद्ध मेमने को पंजों में दबाकर उड़ सकता है, तो मैं भी मेमने को पंजों में दबाकर उड़ सकता हूं। फिर क्यों टुकुर-टुकुर उसका मुंह ताकता रहूं ?'

बस, कौए ने आव देखा न ताव, झपटकर एक भेड़ की पीठ पर अपना पंजा गड़ा दिया। परन्तु उसका पंजा भेड़ के बड़े-बड़े बालों में उलझकर रह गया। उसने भेड़ के बालों से छुटकारा पाने के लिए बहुत-कुछ ज़ोर मारा, अपने पंखों को बहुत कुछ फड़फड़ाया, परन्तु बालों से उसका छुटकारा न हुआ। वह जहां का तहां फंसकर रह गया।

भेड़ों का चरवाहा बड़ी देर तक यह तमाशा देखता रहा। जब कौआ पंख फड़फड़ाते-फड़फड़ाते बिलकुल थक गया, तब चरवाहा उसके पास पहुंचा। उसने हंसते-हंसते कौए को बालों के

फन्दे से छुड़ाया। फिर उसके पंख कतरकर उसे एक ग्रोर धरती पर डाल दिया। शाम होने पर चरवाहा कौए को ग्रपने साथ लेता गया ग्रौर उसे ग्रपने बालकों की ग्रोर बढ़ाते-बढ़ाते बोला, "लो, खेलो इसके साथ!"

बालकों ने कौए को लेते-लेते चरवाहे से पूछा, "यह कौन-सा पक्षी पकड़ लाए पिताजी?"

चरवाहे ने हंसते-हंसते उत्तर दिया, "मैं तो इसे कौग्रा समझता हूं, परन्तु इससे पूछो, तो यह ग्रपने को गिद्ध बताएगा। इसी पागलपन में इसकी यह गति हुई है। सीधी-सी बात है, जो प्राणी निर्बल होने पर भी ग्रपने को सबल समझ बैठता है वह इसी तरह ग्रपनी हंसी उड़वाता है। ग्रादमी को चाहिए कि पहले ग्रपनी सामर्थ्य देखे, ग्रपने पर तोले, तब कोई काम करे।"

४०. सत्यवादी सुख-सम्मान पाता है

गरीब लकड़हारा लकड़ियां काटने के लिए जंगल में पहुंचा। नदी किनारे एक सूखा हुग्रा वृक्ष खड़ा था। लकड़हारा उसी वृक्ष पर चढ़ा ग्रौर उसकी मोटी-पतली डालियां काटने लगा। ग्रचानक उसके हाथ से कुल्हाड़ा छूटा ग्रौर नदी की गहरी धार में जा गिरा।

ग्रब लकड़हारा क्या करता। वह वृक्ष से नीचे उतरा, उसके तने से टिककर बैठ गया ग्रौर फूट-फूटकर रोने लगा। उसका रोना सुना, तो नदी में रहनेवाले देवता का हृदय पसीज उठा।

वे नदी से बाहर निकल आए, लकड़हारे के पास जा खड़े हुए और उससे पूछने लगे, "इस तरह क्यों रो रहे हो भाई ?"

लकड़हारे ने कहा, "महाराज, मैं गरीब लकड़हारा हूं। दिन-भर वन में लकड़ियां काटता और शहर में ले जाकर बेच देता हूं। अभी-अभी अपना कुल्हाड़ा नदी की धार में खो बैठा हूं। अब कैसे लकड़ियां काटूंगा और कैसे अपना तथा बाल-बच्चों का पेट पालूंगा।"

यह सुनते ही देवता ने उसे समझाया, "तो इस तरह क्यों आंसू बहाते हो ! हम अभी नदी में गोता लगाते और तुम्हारा कुल्हाड़ा निकाले लाते हैं।"

इसके बाद देवता नदी में गोता मारकर एक सोने का कुल्हाड़ा निकाल लाए और लकड़हारे को दिखाकर पूछने लगे, "क्या यही तुम्हारा कुल्हाड़ा है ?"

लकड़हारे ने उत्तर दिया, "नहीं महाराज !"

देवता दूसरी बार नदी में गोता मारकर एक चांदी का कुल्हाड़ा निकाल लाए और लकड़हारे को दिखाकर पूछने लगे, "लो देखो, और बताओ, क्या यह तुम्हारा कुल्हाड़ा है ?"

लकड़हारे ने उत्तर दिया, "नहीं महाराज !"

देवता तीसरी बार नदी में गोता मारकर एक लोहे का कुल्हाड़ा निकाल लाए और लकड़हारे को दिखाकर पूछने लगे, "क्या यह कुल्हाड़ा भी तुम्हारा नहीं है ?"

आनन्द से लकड़हारे का चेहरा चमक उठा। उसने उत्तर दिया, "जी महाराज, यही मेरा कुल्हाड़ा है।"

लकड़हारे की यह सत्यवादिता देखकर देवता बहुत प्रसन्न

हुए और उसे तीनों कुल्हाड़े देते-देते बोले, "तुम बड़े सत्यवादी हो। हम तुम्हारा सम्मान करते हैं और प्रसन्नता से तुम्हें ये तीनों कुल्हाड़े पुरस्कार में देते हैं। हमारी दया से अब तुम सदा सुख पाओगे!"

जब लकड़हारा गांव में लौटा, तो उसने यह कहानी अपने मिलने-जुलने वालों को सुनाई। बस, एक आदमी का लोभ जाग उठा। वह दूसरे ही दिन कुल्हाड़ा लेकर वन में पहुंचा और लक-



ड़ियां काटने के लिए उसी वृक्ष पर चढ़ा। परन्तु उसने लकड़ियां काटते-काटते कुल्हाड़ा जान-बूझकर नदी में फेंक दिया। इसके बाद वह वृक्ष से नीचे उतरा और उसके तने से टिककर लगा माथा पीट-पीटकर रोने-धोने।

उस आदमी के रोने-धोने की आवाज़ सुनते ही देवता नदी

से निकलकर बाहर आए और उससे बोले, "तुम क्यों रो रहे हो भाई ?"

उसने अपने रोने का कारण बताया। बस, देवता नदी में गोता मारकर सोने का कुल्हाड़ा निकाल लाए और उससे बोले, "देखो तो, जान पड़ता है; यही तुम्हारा कुल्हाड़ा है।"

उस आदमी ने आनन्द से उछलकर कहा, "हां महाराज, यही मेरा कुल्हाड़ा है। लाइए, कृपा कर दे दीजिए।"

देवता ठहाका मारकर हंसे और बोले, "बदमाश, चला है हमारी आंखों में धूल झोंकने। झूठा कहीं का। जा, अब कभी तुझपर हमारी दया न होगी।"

यह कहकर देवता नदी में चले गए। फिर कभी निकलकर बाहर नहीं आए। वह झूठा आदमी अपनी करतूत पर माथा पीटता रह गया।

४१. कोरी शेखी किस काम की

गीदड़ और बिल्ली में बड़ी मित्रता थी। एक दिन दोनों जंगल में किसी वृक्ष के नीचे बैठे थे और आपस में घुल-मिलकर गप्पें लड़ा रहे थे।

गीदड़ समझता था कि मैं चालाक हूं, समझदार हूं, चतुर हूं; बिल्ली तो मेरे सामने बिलकुल नासमझ—बिलकुल भोली-भाली है। बस, उसने गप्पें लड़ाते-लड़ाते बिल्ली से कहा, "बहिन भला तुम्हीं बताओ; चालाकी, चतुराई और समझदारी में कौन

मेरे सामने ठहर सकता है। यदि कोई विपत्ति आ जाए, तो मैं ऐसी-ऐसी हज़ारों हिकमतें जानता हूं कि आनन-फानन में अपनी जान बचा लूंगा। परन्तु तुम बिलकुल नासमझ और भोली-भाली हो; इसलिए मुझे सदा तुम्हारी चिन्ता लगी रहती है। ज़रा मुझे भी बताओ; विपत्ति आने पर तुम अपनी जान कैसे बचाओगी?"

बिल्ली बोली, "भाई, सचमुच मैं बिलकुल नासमझ और भोली-भाली हूं। यह तुम्हारी कृपा है, जो तुम्हें मेरी चिन्ता लगी रहती है। मैं विपत्ति आने पर बचने के लिए हज़ारों हिकमतें तो नहीं; बस, एक ही हिकमत जानती हूं। यदि समय पर उसे भूल गई, तो अवश्य मारी जाऊंगी। न हो, दस-पांच हिकमतें तुम्हीं बता दो।"

गीदड़ ने कहा, "बहिन, सचमुच मुझे तुमसे बड़ा प्रेम है। मैं नहीं चाहता कि तुम विपत्ति में फंसो और जान खो बैठो। जी में आता है कि बचने के लिए तुम्हें दस-पांच तो क्या सौ-पचास हिकमतें बता दूं। परन्तु करूं क्या, ज़माने का हाल इतना बिगड़ चुका है कि नेकी करने वाला बदले में हमेशा बदी पाता है। इस-लिए डरता हूं। अच्छा चलूं, अब अपना काम-धाम भी देखूं।"

इतने में वहां कुछ कुत्ते गुर्राते-भौंकते हुए आ पहुंचे। बिल्ली आनन-फानन में दौड़कर वृक्ष पर जा चढ़ी और गीदड़ से बोली, "बस, तुम भी यहीं आ जाओ। वहां खड़े-खड़े क्यों अपनी जान खोते हो?"

परन्तु गीदड़ जैसे अपने बचाव की सारी हिकमतें भूल गया। उससे कुछ भी करते-धरते न बना। कुत्तों ने उसे बात की बात में धर दबोचा और चीड़-फाड़ डाला।

यह देखकर बिल्ली बड़ी दुःखी हुई और रोते-रोते बोली, "हाय-हाय, तुम्हारी वे हज़ारों हिकमतें कहां गईं। किसीने सच कहा है—कोरी शेखी किस काम की !"

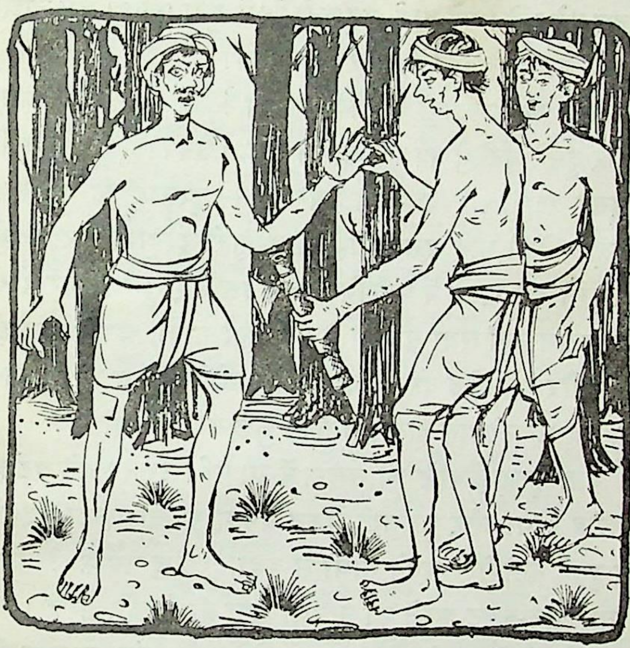
४२. मित्र वही है, जो अपने सुख का भाग देता है

दो बटोही एक साथ कहीं जा रहे थे। अचानक उनको रास्ते में पड़ी हुई सोने की एक कुल्हाड़ी दिखाई दी। बस, पहले बटोही ने लपककर वह कुल्हाड़ी उठा ली और कहा, "अहा, मेरा भाग्य जाग उठा ! मुझे यह सोने की कुल्हाड़ी मिल गई है। अब जीवन-भर गुलछर्रे उड़ाऊंगा और चैन की बंसी बजाऊंगा।"

यह सुनकर दूसरा बटोही बोला, "कैसी बातें करते हो भाई! यह क्यों कहते हो कि कुल्हाड़ी मुझे मिली है; यह क्यों नहीं कहते कि कुल्हाड़ी हमें मिली है ? जब हम दोनों मित्र हैं और एकसाथ चल रहे हैं, तब यह कुल्हाड़ी हम दोनों को मिली है और इसमें हम दोनों का बराबर-बरावर भाग है। कुछ समझे ?"

पहले बटोही ने हंसकर कहा, "वाह, अच्छे रहे ! कुल्हाड़ी पहले मैंने देखी है और मैंने ही उठाई है। फिर इसमें तुम्हारा भाग कैसे हो गया ? देखो भाई, साफ बात है, कुल्हाड़ी मुझे मिली है, इसलिए मेरी है। मैं तुम्हें इसका कोई भाग न दूंगा।"

इसपर दूसरा बटोही कुछ न बोला, चुपचाप रास्ता चलने लगा। इतने में कुल्हाड़ी का मालिक दौड़ता-दौड़ता वहां आ पहुंचा। उसने कसकर पहले बटोही का हाथ पकड़ा और गरज-



कर कहा, "मेरी कुल्हाड़ी कहां लिए जाता है? बस, चल मेरे साथ राजा के पास, नहीं तो मारते-मारते कचूमर निकाल दूंगा। चोर कहीं का!"

अब तो पहला बटोही बहुत घबराया और दूसरे बटोही से बोला, "मित्र, अब तो हम दोनों बुरे फंसे! हम न यह कुल्हाड़ी उठाते, न इस विपत्ति में फंसते!"

दूसरे बटोही ने उत्तर दिया, "खूब रहे तुम भी। अभी क्या कह रहे थे कि कुल्हाड़ी मुझे मिली है और मेरी है; इसलिए मैं तुम्हें इसका कोई भाग न दूंगा। अब पकड़े गए तो कहने लगे

कि हम बुरे फंसे। अरे भाई, यह कहो कि मैं बुरा फंसा। बस जाओ राजा के पास कचहरी में, और भोगो सज़ा।"

भला पहला बटोही अब क्या कहता ! वह आंखों में आंसू भरकर दूसरे बटोही का मुंह ताकने लगा। उसकी यह दशा देखी तो दूसरे बटोही को दया आ गई और उसने कुल्हाड़ी के मालिक से कहा, "देखो भाई, इस बटोही ने तुम्हारी कुल्हाड़ी चुराई नहीं है, यह तो इसे रास्ते में पड़ी मिली है। इसलिए तुम इसपर चोरी का अपराध नहीं लगा सकते। मेरा कहना मानो, अपनी कुल्हाड़ी ले लो और इसे छोड़ दो। कचहरी में जाओगे तो तुम भी परेशान होगे, यह भी परेशान होगा; नतीजा कुछ न निकलेगा !"

बात कुल्हाड़ीवाले की समझ में आ गई। उसने पहले बटोही को छोड़ दिया और कुल्हाड़ी लेकर अपना रास्ता पकड़ा। इसके बाद दूसरे बटोही ने अपने साथी से कहा, "कुछ समझे ? मित्र के साथ छल-कपट करने का नतीजा बुरा ही निकलता है। जो आदमी अपने मित्र को सुख का भाग देते हुए मुंह चुराता है; भला वह उसे दुःख का भाग किस बिरते पर दे सकता है ?"

४३. सहज पके सो मीठा होय

एक गीदड़ बहुत भूखा था। उसने कई दिन से कुछ खाया-पिया नहीं था। इसलिए उसका पेट खाली हो गया था और शरीर दुबला-पतला पड़ गया था। फिर भी वह सर लटकाए और मुंह बाए भोजन की तलाश में इधर-उधर भटक रहा था।

अन्त में गीदड़ कुछ खेतों के पास पहुंचा, तो देखता क्या है कि किसानों ने एक पेड़ के खोखल में भोजन का बहुत-सा सामान छिपा रखा है। अब क्या था, गीदड़ मारे खुशी के पागल हो उठा। लप से पेड़ की खोखल में जा घुसा, और लगा आंखें बन्द कर खाने का सामान अपने पेट में ठूंसने।

थोड़ी ही देर में गीदड़ ने इतना सामान खा लिया कि उसका पेट फूलकर नगाड़ा हो गया। अब जाकर उसे होश आया और उसने खोखल से निकलकर भागना चाहा। परन्तु उसका बड़ा पेट खोखल में अड़ गया और वह खोखल से बाहर न निकल पाया।

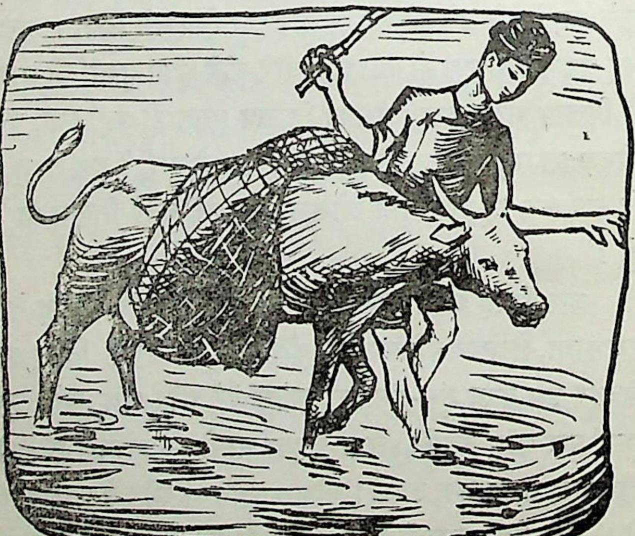
अब तो गीदड़ बहुत घबराया। खोखल से बाहर निकलने के लिए ठहर-ठहरकर ज़ोर लगाने लगा। परन्तु उसके नगाड़े जैसे फूले हुए पेट ने उसे खोखल से बाहर न निकलने दिया। अन्त में वह थककर निराश हो गया और धीरे-धीरे 'हुआं-हुआं' की आवाज़ में विलाप करने लगा। उसका विलाप सुनते ही वहां एक दूसरा गीदड़ आ पहुंचा और बोला, "क्या बात है भाई ? इस तरह क्यों विलाप कर रहे हो ? क्या खोखल से बाहर नहीं निकल पा रहे हो ?"

जब गीदड़ अपना दुखड़ा रो चुका, तब दूसरे गीदड़ ने उसे समझाया, "पत्थर पड़ें तुम्हारी बुद्धि पर ! पहले बिना सोचे-विचारे इस तरह ठूंस-ठूंसकर भकोस बैठे और अब लगे 'हुआं-हुआं' कर आंसू बहाने। मेरा कहना मानो—उतावले मत होओ और कुछ समय तक ठहरो। भोजन पचने दो और पेट छोटा होने दो। बस, तब आसानी से खोखल के बाहर निकल आओगे।

जल्दी मत करो, वरना घायल हो जाओगे। सहज पके सो मीठा होय।"

४४. जब धूर्तता का भेद खुल जाता है

एक बनिया नमक का कारोबार करता था। वह प्रतिदिन शहर से बैल लेकर नदी के उस पार समुद्र के किनारे पहुंचता। वहां नमक खरीदता। उसे बैल पर लादकर नदी के इस पार शहर में लाता था और दुकानदारों को बेच देता था। नदी का पाट संकरा था और उसमें जल भी थोड़ा रहता था। इसलिए उसे पार करने में किसीको कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता था। हर



कोई नदी के इस पार या उस पार पांव-प्यादे आ-जा सकता था परन्तु बैल रोज़-रोज़ की इस दौड़-धूप से ऊब चुका था, और वहुधा मन में सोचने लगता था, 'हे भगवान, मैं कब तक इस प्रकार मरता-खपता रहूंगा ? क्या इस दौड़-धूप से कभी छुटकारा न पा सकूंगा ?'

एक दिन क्या हुआ कि नदी की बीच धार में बैल का पैर फिसल गया और वह धम से पानी में गिर पड़ा। नतीजा यह निकला कि बैल पर जो नमक लदा था, वह पानी में बहुत कुछ घुल गया। बैल की पीठ पर का वज़न कम हो गया और वह बड़ी सरलता से नदी के इस पार निकल आया। अब तो उसे बड़ा अचरज हुआ। वह मन में कहने लगा, 'वाह, यह तो बड़ा मज़ा रहा ! मैं पानी में क्या गिरा, मेरी पीठ का बोझ एकदम हल्का हो गया। यदि मैं इसी प्रकार प्रतिदिन पानी में गिर जाया करूं, तो···?'

बस, दूसरे दिन बैल सचमुच जान-बूझकर नदी की धार में गिर पड़ा। पिछले दिन के समान आज भी उसकी पीठ का बोझ कम हो गया और वह सरलता से नदी के इस पार आ पहुंचा। अब तो बैल ने बहुत अच्छा उपाय पा लिया था। वह प्रतिदिन पानी में गिरने लगा और इस प्रकार अपनी पीठ का बोझ कम करने लगा।

बनिया पांच-छः दिन बाद ही बैल की सारी चालाकी समझ गया और मुसकराकर बोला, "बच्चू, तुम नदी की धार में फिसल-कर नहीं गिरते, जान-बूझकर लेट रहते हो और मुझे हानि पहुंचाते हो। ठहरो, कल ही इस चालाकी का वह मज़ा चखोगे

कि जीवन-भर याद रखोगे।"

जब अगले दिन बनिया बैल को लेकर नदी किनारे पहुंचा, उसने बैल की पीठ पर नमक की बजाय खूब कस-कसकर कपड़ा लादा और उसपर हंकनी फटकारते-फटकारते कहा, "बस बेटे, चल—टिक्-टिक्-टिक् !"

बैल भाग चला और नदी में जा पहुंचा। प्रतिदिन के समान धम से पानी में जा रहा। बनिये ने हंसकर कहा, "गिर पड़ा न ! अब हो तैयार चालाकी का मज़ा चखने के लिए ! बड़ा चतुर-चालाक बनता था।"

बनिये ने आज बैल को प्रतिदिन की तरह जल्दी नहीं उठाया जब कपड़ा खूब पानी पी गया, खूब वज़नदार हो गया, तब कहीं उसने बैल को सहारा देकर नदीं के पाट से बाहर पहुंचाया और उसपर हंकनी फटकारते-फटकारते कहा, "बस बेटे, चल—टिक्-टिक्-टिक् !"

अब बैल को आटे-दाल का भाव मालूम हो रहा था, मारे बोझ के उसका शरीर चूर-चूर हो रहा था, फिर भी वह धीरे-धीरे एक-एक पैर आगे बढ़ा रहा था और सोच रहा था, 'सदा एक ही रास्ते पर चलने से काम नहीं बनता। जब प्राणी की चालाकी का भेद खुल जाता है, तब उसे न जाने क्या-क्या सहना पड़ता है !'

४५. गड़ा धन पत्थर समान

एक महाजन बेहद कंजूस था। वह पेट काट-काटकर धन बचाने के सिवाय और कुछ जानता ही नहीं था। धीरे-धीरे उसके पास खूब धन जमा हो गया—उसके घर में धन ही धन दिखाई देने लगा। अब उसने सोचा, 'यह तो बुरा हुआ। मैंने कंजूसी कर, पेट काट-काटकर धन जमा किया है और अब घर में धन ही धन दिखाई देता है। यदि इसपर चोरों की नज़र पड़ गई, तो ? कहीं इसे चोर उड़ा ले गए तो ? अब इसकी रक्षा कैसे की जाए ?'

अन्त में महाजन को एक उपाय सूझा। उसने अपने सारे संचित धन से एक बहुत मूल्यवान और जग-मग करता हीरा खरीद लिया और मन में कहा, 'चलो, छुट्टी हुई। यह हीरा कहीं छिपाकर, धरती में गाड़कर रख दूंगा। फिर चोर क्या चुराएंगे, अपना सिर! केवल उस चीज़ के चोरी होने का डर रहता है, जो लोगों को दिखाई देती है!'

बस, महाजन ने उसी दिन वह हीरा चुपचाप अपने घर के एक कोने में गाड़ दिया। परन्तु अब उसका मन किसी काम में न लगता—दिन-रात हीरे में ही लगा रहता। इसलिए वह प्रतिदिन मौका पाते ही घर के उस कोने में पहुंचता और धरती खोदकर देखता कि वहां हीरा है या नहीं—किसीने उसे उड़ाया तो नहीं!

महाजन का एक नौकर पूरा काइयां था। उसने सोचा, 'मालिक प्रतिदिन चुपके-चुपके घर के उस कोने में क्यों जाते हैं

ग्रौर वहां घण्टों क्या देखते रहते हैं ? इस कंजूस ने मक्खीचूस बनकर जो धन जमा किया है, पता नहीं वह कहां उड़ा दिया है ? शायद उसी कोने में छिपा रखा है । देखना तो चाहिए कि बात क्या है।'

बस, एक दिन मौका पाते ही नौकर उस कोने में जा पहुंचा। धरती खोदते-खोदते ज्योंही उसके हाथ में वह हीरा ग्राया, त्यों



ही वह मारे खुशी के उछल पड़ा ग्रौर फिर वहां से ऐसा गायब हुग्रा, जैसे गधे के सर से सींग ।

महाजन दूसरे दिन ग्रपने नियम के ग्रनुसार उस कोने में पहुंचा, तो देखता क्या है कि धरती खुदी पड़ी है ग्रौर हीरा गायब

है। महाजन के पैरों तले से जैसे धरती खिसक गई। उसने घबराकर सारी मिट्टी छान डाली, परन्तु उसमें हीरा होता, तब तो मिलता। अब तो बेचारे महाजन का बुरा हाल हुआ। वह लगा अपना माथा पीटने और चीखने-चिल्लाने, "हाय, मैं लुट गया! हाय, मेरा प्यारा हीरा कहां चला गया।"

महाजन की यह चीख-पुकार सुनी तो एक पड़ोसी उसके पास दौड़ा आया और बोला, "क्या बात है? इस तरह क्यों रो रहे हैं आप?"

महाजन ने माथा पीटते-पीटते उत्तर दिया, "मैं तो लुट गया भैया। मैंने एक बेशकीमती हीरा यहीं—इसी कोने में छिपा रखा था। मालूम नहीं, कौन पापी उसे उड़ा ले गया।"

पड़ोसी ने पत्थर का एक टुकड़ा उठाया और महाजन की ओर बढ़ाते-बढ़ाते कहा, "तो इस तरह चीखने-चिल्लाने की क्या आवश्यकता है। लीजिए हीरे के स्थान पर पत्थर का यह टुकड़ा रख दीजिए।"

महाजन छाती पीटते-पीटते बोला, "क्यों मेरी दिल्लगी उड़ाते हो भैया? मैंने जीवन-भर अपना और दूसरों का पेट काट-कर धन जमा किया था और उसके बदले वह हीरा खरीदा था। ज़रा सोचो, कहां हीरा और कहां पत्थर।"

पड़ोसी ने कहा, "मैं दिल्लगी नहीं उड़ाता, सच कहता हूं। आखिर आप हीरा देखते ही थे, उससे कुछ काम तो लेते नहीं थे। अब उसके बदले यह पत्थर देखिए और समझिए कि हमारे पास हीरा ही है। भला, जो धन धरती में गड़ा रहता है, किसीके काम नहीं आता, वह पत्थर से किस बात में बढ़कर है? धन तो

खुद खाने-पीने के लिए होता है, दूसरों को खिलाने-पिलाने के लिए होता है। यदि वह इन कामों में नहीं आता, तो इसी तरह नष्ट हो जाता है।"

४६. प्राणी उपकार से ही बड़प्पन पाता है

धूप ज़ोरों से पड़ रही थी। एक सिंह अपने शिकार की खोज में घूमते-घूमते थक गया और धूप से घबरा उठा। बस, वह एक पेड़ की छाया में जा लेटा और लेटते ही गहरी नींद में मग्न हो गया।

पेड़ की जड़ में एक चूहा बिल बनाकर रहता था। वह अचानक बिल से बाहर निकला तो सिंह को गहरी नींद में सोया देखकर प्रसन्न हो उठा। बस, पहुंचा उछलकर सिंह के पास और लगा उसके शरीर पर धमा-चौकड़ी मचाने। चूहे की इस धमा-चौकड़ी से सिंह की नींद टूट गई। उसने क्रोध में आकर जो अपना पंजा फटकारा, तो चूहे को दबोच लिया।

अब तो चूहा बहुत घबराया और लगा आंसू बहाते-बहाते सिंह से विनती करने, "सरकार, आप जंगल के राजा हैं! पल में बड़े-बड़े हाथियों को पछाड़ देते हैं। भला, मैं ज़रा-सा चूहा आपके सामने किस गिनती में हूं और मुझे मार डालना आपके लिए कौन-सा बड़ा काम है। इससे आपकी बड़ाई न होगी। लोग यही कहेंगे कि सिंह ने चूहे को मार डाला तो क्या बहादुरी दिखाई। इसलिए दया कीजिए, मुझे छोड़ दीजिए। मैं आपका उपकार कभी न भूलूंगा और बन सकेगा तो इस उपकार का

बदला भी चुका दूंगा।"

चूहे की यह विनती सुनी तो सिंह का क्रोध हवा हो गया। वह हंसते-हंसते बोला, "अच्छा, मैंने तुझे छोड़ दिया! जा, तू भी क्या कहेगा!"

सिंह के पंजे से छुटकारा पाते ही चूहा लप-से अपने बिल में जा घुसा।

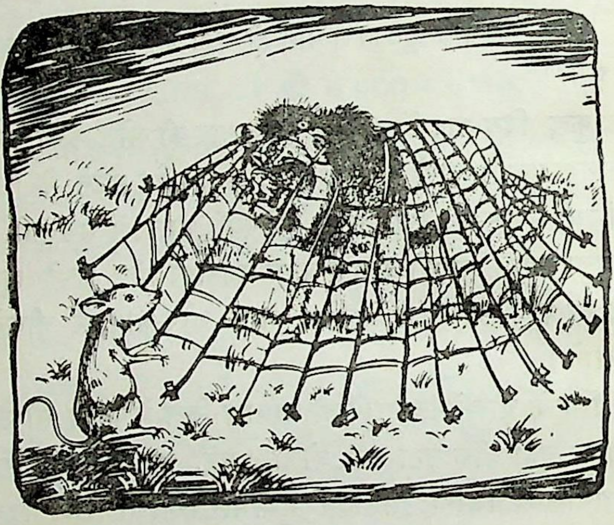
कुछ दिन बाद सिंह जंगल में शिकार की खोज करते-करते अचानक एक शिकारी के जाल में जा फंसा। वह छूटने के लिए ज्यों-ज्यों उछल-कूद करने लगा, त्यो-त्यों जाल में मज़बूती से जकड़ता गया। अब तो बेचारा बहुत घबराया और अपने छुटकारे का कोई उपाय न देखकर लगा ज़ोर-ज़ोर से चीखने-चिल्लाने।

सिंह के चीखने-चिल्लाने की आवाज़ बिल में पहुंची तो उसे सुनते ही चूहा चौंक उठा और बोला, "अरे, यह तो उसी सिंह की आवाज़ है, जिसने उस दिन मुझे मारते-मारते छोड़ दिया था। मालूम होता है, बेचारा किसी मुसीबत में फंस गया है। यदि यह बात न होती, तो भला वह क्यों इस तरह चीखता-चिल्लाता। चलूं, देखूं तो सही, उसे मुसीबत से बचाने के लिए कुछ कर सकता हूं या नहीं। भगवान करे, मैं उसे मुसीबत से बचा लूं, तो उसके उपकार का बदला चुक जाए।"

बस, चूहा चटपट बिल से बाहर निकला और दौड़ा-दौड़ा जंगल में पहुंचा। देखता क्या है कि वही सिंह जाल में मज़बूती से जकड़ा पड़ा है और उसकी चिल्लाहट से सारा जंगल गूंज रहा है।

चूहे ने एक ही छलांग में सिंह के सामने जाकर कहा, "मुझे

पहचानते हैं सरकार ? उस दिन आपने मेरी विनती पर मुझे मारते-मारते छोड़ दिया था। मैं आपका वह उपकार भूला नहीं हूं और उसका बदला चुकाने के लिए आ पहुंचा हूं । देखिए, मैं



अभी यह जाल काटता हूं और आपको इस मुसीबत से छुटकारा दिलाता हूं। मेरे रहते आपको घबराने की ज़रूरत नहीं।"

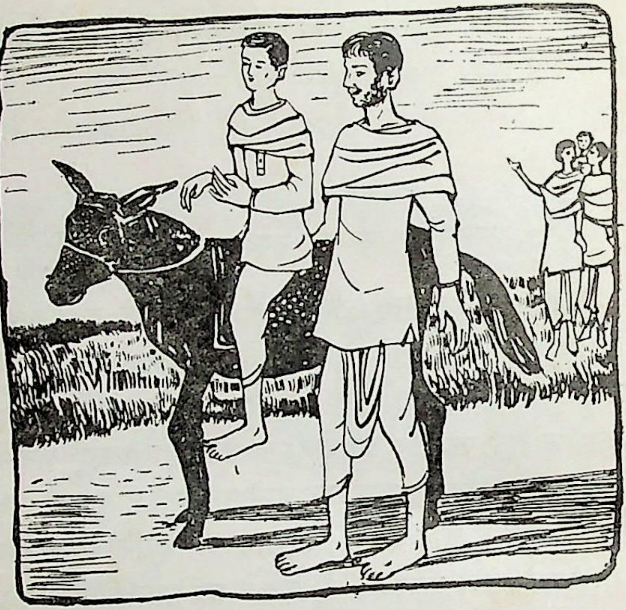
यह कहकर चूहे ने अपने पैने दांतों से जाल कुतर डाला। सिंह इस मुसीबत से छुटकारा पाते ही उठकर खड़ा हो गया और हंसते-हंसते बोला, "वाह, चूहे भाई वाह ! तुम हो तो ज़रा-से, परन्तु उपकार याद रखना जानते हो, उपकार का बदला भी चुकाना जानते हो , इसलिए मुझसे कम नहीं हो। प्राणी उपकार से ही बड़प्पन पाता है। उपकार महानता का चिह्न है अच्छा, धन्यवाद—बहुत-बहुत धन्यवाद !"

इसके बाद वह शिकार की खोज करने के लिए जंगल में चला गया।

४७. सबको प्रसन्न रखना मुश्किल है

एक किसान के पास एक टट्टू था। एक दिन वह अपने बेटे को साथ लेकर टट्टू बेचने के लिए मेले की ओर चला। मज़े की बात यह थी कि किसान पैदल चल रहा था, किसान का बेटा भी पैदल चल रहा था और उन दोनों के साथ खाली टट्टू खट्-खट् रास्ता नाप रहा था। कुछ दूर जाने पर उन्हें तीन-चार लड़के मिले, जो मेले से लौट रहे थे। किसान और उसके बेटे को पैदल चलते देखकर उन लड़कों में से एक ने अपने साथियों से हंसते-हंसते कहा, "आह, कितने बुद्धू हैं ये दोनों। खुद पैदल चल रहे हैं और टट्टू को खाली लिए जा रहे हैं। चाहें, तो मज़े से टट्टू पर चढ़कर मेले में जा सकते हैं। तुमने और भी कहीं देखे हैं ऐसे बुद्धू !"

लड़के की ये बातें सुनकर किसान ने अपने बेटे को टट्टू पर बिठा दिया और वह खुद टट्टू को हांकता हुआ उसके पीछे-पीछे चलने लगा। थोड़ी दूर जाने पर उन्हें दो-तीन बूढ़े आदमी मिले। उनमें से एक बूढ़ा आगबबूला होकर किसान के बेटे से बोला, "अरे मूर्ख, नीचे उतर ! तू जवान है, तगड़ा है, फिर भी मज़े से टट्टू पर लदा है। और बेचारा बूढ़ा बाप पैदल चल रहा है। तुझे शर्म नहीं मालूम होती ? चल, उतर नीचे, टट्टू पर बाप को



सवार होने दे।"

यह सुनते ही किसान का बेटा टट्टू से नीचे उतर पड़ा और अपने पिता से बोला, "बूढ़े बाबा ठीक कहते हैं। टट्टू पर आप सवार हो जाइए।"

बस, किसान टट्टू पर बैठ गया और बेटा उसके पीछे-पीछे पैदल चलने लगा। थोड़ा आगे बढ़ने पर उन्हें कुछ स्त्रियां मिलीं जो अपने बच्चों को मेला दिखाकर लौट रही थीं। उनमें से एक स्त्री अपनी किसी साथिन से बोली, "देख तो बहन, यह बूढ़ा कितना निर्दयी है। इसमें जैसे शर्म का नाम ही नहीं है। यह खुद तो बड़े मज़े से टट्टू पर सवार है और बेटे को ऐसी धूप में पैदल

घसीट रहा है। हाय-हाय, टट्टू के पीछे दौड़ते-दौड़ते बेचारे लड़के का मुंह किस तरह सूख गया है।"

अब किसान क्या करता! उसने बेटे से कहा, "आ, तू भी मेरे पीछे सवार हो जा!"

बेटा फौरन बाप के पीछे सवार हो गया। इस प्रकार दोनों बाप-बेटा टट्टू पर चढ़कर आगे बढ़े ही थे कि सामने से एक बाबाजी आ निकले। बाबाजी पहले तो उनको आंखें फाड़-फाड़कर घूरते रहे, फिर मुंह बनाकर बोले, "अरे भाई, यह किसका टट्टू पकड़ लाए ?"

किसान ने उत्तर दिया, "टट्टू तो बाबाजी, हमारा ही है। क्यों, क्या बात है ?"

बाबाजी बिगड़कर बोले, "यह टट्टू तुम्हारा है ? शर्म नहीं मालूम होती। कहने लगे कि टट्टू तो हमारा ही है। जब तुम दोनों इसपर इस तरह लदे हो, इस तरह इसकी जान ले रहे हो, तो कौन मानेगा कि यह टट्टू तुम्हारा है।"

इसपर किसान बेटे सहित टट्टू से नीचे उतर पड़ा और उसने बाबाजी से पूछा, "बताइए, हम लोग क्या करें ?"

बाबाजी ने उत्तर दिया, "बताएं क्या, सीधी-सी तो बात है! जिस तरह तुम इसपर लटककर आए हो, उसी तरह इसे अपने कन्धों पर लादकर ले जाओ, तो हम भी जानें कि यह टट्टू तुम्हारा है।"

यह कहकर बाबाजी तो लम्बे हुए, मुसीबत में पड़ गए वे दोनों बाप-बेटा। उन्होंने पहले तो टट्टू के चारों पैर रस्सी से कसकर बांधे और उनके बीच में एक मज़बूत लकड़ी डाल दी। इसके

बाद वे उसी लकड़ी के सहारे टट्टू को अपने कन्धों पर लादकर आगे बढ़े। टट्टू इस कष्ट में पड़ा, तो लगा ज़ोर-जोर से छटपटाने और चीखने-चिल्लाने।

रास्ते में एक नदी पड़ती थी, जिसपर पुल बंधा हुआ था। उस समय पुल पर लोगों का अच्छा-खासा जमाव था। जब उन्होंने देखा कि दो आदमी लकड़ी के सहारे ज़िन्दा टट्टू को अपने कन्धों पर लादे चले आ रहे हैं, तो वे बहुत चकराए। फिर सबके सब उन्हींकी ओर दौड़ पड़े और लगे ज़ोरों से 'हा-हा, ही-ही' करने तथा तालियां पीटने।

लोगों का यह शोर-गुल सुना तो टट्टू और भी भड़का और लगा जान छोड़कर छटपटाने। आखिर उसके पैरों में बंधी हुई रस्सी तड़ाक से टूट गई और वह धम से पुल के नीचे नदी में जा गिरा तथा गिरते ही मर गया।

बेचारा किसान वहीं पुल पर माथा थामकर बैठ गया और आंसू बहाते-बहाते कहने लगा, "हाय-हाय, मैंने तो सबको प्रसन्न रखना चाहा परन्तु कोई प्रसन्न नहीं हुआ, उलटे मुझे ही इतना दुःख उठाना और अपने टट्टू से हाथ धोना पड़ा।"

◇ ◇ ◇